तृतीय वर्ष (हिन्दी)

सत्र - VI (CBCS)

प्रश्नपत्र क्र. VIII

भाषा विज्ञान : हिंदी भाषा और व्याकरण

(LINGUISTICS : HINDI LANGUAGE AND GRAMMAR)

पेपर कोड - UAHIN-605

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्रा. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
प्रभारी कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. डॉ. अजय भामरे
प्रभारी प्र-कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. प्रकाश महानवर
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व प्रमुख, मानव्य विद्याशाखा,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

अभ्यास समन्वयक, संपादक एवं लेखक : **डॉ. अनिल चौधरी**
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), दूर व मुक्त अध्ययन संस्था (IDOL),
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना, सांताक्रुज (ई), मुंबई-४०० ०९८.

लेखक : **डॉ. सुधीर चौबे**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
के. सी. महाविद्यालय, चर्चगेट, मुंबई

मे २०२३, प्रथम मुद्रण

प्रकाशक
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई - ४०००९८.

अक्षरजुळणी
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
सांताक्रुझ, मुंबई.

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा	०१
२.	आधुनिक भारतीय आर्य भाषा	१८
३.	हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास	२३
४.	हिंदी की प्रमुख बोलियाँ	३०
५.	खड़ीबोली हिन्दी के विविध रूप	३४
६.	हिन्दी का शब्द समूह	४३
७.	देवनागरी लिपि : विशेषताएँ एवं महत्त्व	५१
८.	संधि : अर्थ, स्वरूप तथा प्रमुख भेद	५९
९.	वाक्य रचना	७९
१०.	हिन्दी वाक्य रचना में अध्याहार और पदक्रम संबंधी सामान्य नियम	८८
११.	समास : अर्थ, स्वरूप तथा प्रमुख क्षेत्र	९७

*****

NAME OF PROGRAM	T. Y. B. A. (C.B.C.S.) VIII
NAME OF THE COURSE	T.Y.B.A. HINDI
SEMESTER	VI
PAPER NAME	LINGUISTICS : HINDI LANGUAGE AND GRAMMAR भाषा विज्ञान : हिन्दी भाषा और व्याकरण
PAPER NO.	VIII
COURSE CODE	UAHIN–605
LACTURE	60
CREDITS & MARKS	CREDITS - 4 & MARKS - 100

भाषा विज्ञान : हिन्दी भाषा और व्याकरण

इकाई – I

- प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का सामान्य परिचय –
  क) वैदिक संस्कृत, ख) लौकिक संस्कृत, ग) पालि, घ) प्राकृत, ङ) अपभ्रंश
- आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का सामान्य परिचय–
  क) सिन्धी, ख) मराठी, ग) पंजाबी, घ) गुजराती, ङ) बांग्ला

इकाई – II

- हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास
- हिन्दी की प्रमुख बोलियों का सामान्य परिचय –
  क) ब्रजभाषा, ख) अवधी, ग) भोजपुरी, घ) खड़ी बोली
- खड़ी बोली हिन्दी के विविध रूप –
  क) हिन्दी, ख) हिंदुस्तानी, ग) उर्दू , घ) दक्खिनी

इकाई – III

- हिन्दी का शब्द समूह
- देवनागरी लिपि : विशेषताएँ एवं महत्व
- संधि : अर्थ, स्वरूप तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय

इकाई – IV

- वाक्य रचना –
  क) वाक्य की परिभाषा, अर्थ और रचना की दृष्टि से वाक्य के प्रकार
  ख) हिन्दी वाक्य रचना में अध्याहार और पदक्रम संबंधी सामान्य नियम
- समास : अर्थ, स्वरूप तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद
2. हिन्दी भाषा और लिपि – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग
3. भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
4. हिन्दी भाषा का इतिहास – डॉ. भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5. भाषा विज्ञान की भूमिका – देवेन्द्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
6. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण – श्यामचन्द्र कपूर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
7. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण एवं रचना – डॉ. संतोष चौधरी, कनक सक्सेना, आस्था प्रकाशन, जयपुर
8. मानक हिन्दी व्याकरण और रचना – डॉ. हरिवंश तरुण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
9. हिन्दी व्याकरण – पं. कामता प्रसाद गुरु, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
10. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त – डॉ. राम किशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
11. हिन्दी व्याकरण और रचना – वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
12. हिन्दी शब्दानुशासन – आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
13. आधुनिक भाषा विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
14. हिन्दी भाषा इतिहास और संरचना – डॉ. हरिश्चंद्र पाठक, तक्षशीला प्रकाशन, नई दिल्ली
15. मानक हिन्दी व्याकरण – डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
16. सामान्य भाषा विज्ञान – डॉ. बाबूराम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
17.हिन्दी संज्ञा सरंचना और कुछ नियम– डॉ. प्रीति सोहनी,साहित्य रत्नाकर,कानपुर
18.भारतीय साहित्य सिद्धान्त– डॉ. तारकनाथ बाली,किताब प्रकाशन,नई दिल्ली

<u>**नमूना प्रश्न पत्र**</u>

Semester – VI   Course –VIII

अवधि : 03:00 घंटे   पूर्णांक : 100

सूचना : 1. सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।
2. सभी प्रश्नों के लिए समान अंक हैं।

प्रश्न 1. मध्यकालीन आर्य भाषाओं का सामान्य परिचय दीजिए। 20

अथवा

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का सामान्य परिचय दीजिए।

प्रश्न 2. हिन्दी की प्रमुख बोलियों का सामान्य परिचय दीजिए। 20

अथवा

खड़ी बोली हिन्दी के प्रमुख रूपों की चर्चा कीजिए।

प्रश्न 3. हिन्दी के शब्द समूह पर प्रकाश डालिए। 20

अथवा

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ लिखिए।

प्रश्न 4. वाक्य की परिभाषा देते हुए अर्थ और रचना की दृष्टि से वाक्यों के प्रकार लिखिए। 20

अथवा

समास का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय दीजिए।

प्रश्न 5. निम्न में से किन्हीं दो विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए। 20

क) लौकिक संस्कृत

ख) ब्रजभाषा

ग) अध्याहार

घ) देवनागरी लिपि का महत्व

१

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा

इकाई की रुपरेखा

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१. प्रस्तावना

१.२ प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का सामान्य परिचय

  १.२.१ वैदिक संस्कृत

  १.२.२ लौकिक संस्कृत

१.३ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का सामान्य परिचय

  १.३.१ पालि

  १.३.२ प्राकृत

  १.३.३ अपभ्रंश

१.४ सारांश

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.६ टिप्पणियाँ

१.७ संदर्भ ग्रंथ

१.०. इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में छात्र निम्नलिखित बिंदुओं से परिचित हो जायेंगे -

- प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का अध्ययन करेंगे |
- मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं को जान सकेंगे |
- प्राचीन में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत का परिचय प्राप्त हो जायेगा |
- मध्यकालीन आर्य भाषाओं में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश को विस्तार से जानेगें |

१.१ प्रस्तावना

भारत देश में आर्यों का आगमन होने के बाद से ही भारतीय आर्य भाषा का इतिहास शुरू होता हैं | ये आर्य करीबन १५०० ई. पू. पश्चिमी और पश्चिमोत्तरी सीमा से भारत में प्रविष्ट हुए थे | इसी से हम यह कह सकते है कि भारत में आर्यभाषा का प्रारम्भ १५०० ई. पू. के

आसपास से हुआ है। तब से आज तक भारतीय आर्यभाषा की आयु साढ़े तीन हजार वर्षों की हो चुकी है। भाषिक विशेषताओं के आधार पर भारतीय आर्यभाषा की इस लम्बी आयु को तीन कालखण्ड में विभाजित किया गया है | भारतीय आर्यभाषा का विभाजन इस प्रकार से हैं -

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (प्रा.भा.आ.) १५०० ई. पू. - ५०० ई. पू.

(२) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (म.भा.आ.) ५०० ई. पू. - १००० ई.

(३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (आ.भा. आ.) १००० ई. से अब तक

यहाँ पर प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भषाओं को विस्तार से जान लेते हैं |

१.२ प्राचीन भारतीय आर्य भाषा : (१५०० ई. पू. - ५०० ई. पू.)

भारत में आर्यों का आगमन हुआ, तब यहाँ विशेषतः आर्येतर लोगों के मिश्रण से भाषा में परिवर्तन होने लगा था | और वह अपनी भगिनी-भाषा ईरानी से कई बातों में अलग हो गई। भारतीय आर्यभाषा का प्राचीनतम रूप हमें वैदिक संहिताओं में देखने को मिलता है। वैदिक संहिताओं का कालखण्ड १२०० ई. पू. से ९०० ई. पू. के लगभग है। वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं थी। कुछ की भाषा बहुत पूर्ववर्ती है, तो कुछ की परवर्ती | ऋग्वेद में ही प्रथम और दसवें मण्डलों की भाषा तो बाद की है, और शेष की पुरानी हैं | यही पुरानी भाषा कहीं-ना-कहीं हमें अवेस्ता के निकट दिखाई देती है। अन्य संहिताएं (यजुः, साम, अथर्व) और बाद की हैं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा से वैदिक संहिताओं की भाषा भिन्न रही हैं, क्योंकि यह काव्य-भाषा है। ब्राह्मणों-उपनिषदों की भाषा कुछ अपवादों को छोड़कर संहिताओं के बाद की है। गद्य भाग की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट की है। इस समय तक आर्यों का केन्द्र मध्यदेश हो चुका था, यहाँ की भाषा उत्तरी जितनी शुद्ध नहीं थी। भाषा का और विकसित रूप हमें सूत्रों में मिलता है। संस्कृत पाणिनीय संस्कृत के काफ़ी पास पहुँच गई है, यद्यपि उसमें पाणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं है। इसी काल के अन्त में लगभग ५ वीं सदी में, पाणिनि ने अपने व्याकरण में, उदांच्य में प्रयुक्त संस्कृत के रूप से, अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित एवं पण्डितों में मान्य रूप को नियमबद्ध किया, जो सदा-सर्वदा के लिए लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत का सर्वमान्य आदर्श बन गया। पाणिनि की रचना के बाद पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, आधुनिक भाषाओं के रूप में विकसित हुई है, परंतु संस्कृत में साहित्य-रचना भी इसके समानान्तर ही होती चली आ रही है, जो मूलतः पाणिनीय संस्कृत होने पर भी हर युग की बोलचाल की भाषा का अनेक दृष्टियों से कुछ प्रभाव लिये हुए है, और यही कारण है कि बोलचाल की भाषा न होने पर भी उस साहित्यिक संस्कृत में भी विकास होता आया है। भाषा विद्वानों के अनुसार रामायण - महाभारत की भाषा पाणिनि के बाद की है। कालिदास से होते क्लैसिक संस्कृत, हितोपदेश तक तथा और आगे तक आई है।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के निम्नलिखित दो रूप हैं:

१. वैदिक संस्कृत

१.२.१ वैदिक संस्कृत : (१५०० ई. पू. से ८०० ई. पू.)

वैदिक संस्कृत का कालखण्ड १५०० ई. पू. से ८०० ई. पू. तक है | वैदिक संस्कृत को 'वैदिक भाषा', वैदिकी', 'छन्दस', 'छान्दस,' तथा 'प्राचीन संस्कृत' आदि नाम से भी पुकारते हैं | भारतीय आर्य भाषा समूह का प्राचीन रूप 'ऋग्वेद' में देखने को मिलता है। ऋग्वेद का समय अनिश्चित है। ऋग्वेद के मंत्रों को देखने से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उसकी रचना न एक समय में हुई है और न एक स्थान में। वह कई शताब्दियों और कई स्थानों की रचना है जैसा उसमें विद्यमान भाषा-भेद के लिए जाना जाता है। यह भाषा-भेद देश और काल के भेद के कारण है। ऋग्वेद के दस मंडलों में प्रथम और दशम मंडल बाद की रचना माने जाते हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि चार रूपों की गणना होती है। संहिता से उपनिषद् तक का विकास भाव-धारा की दृष्टि से ही नहीं, भाषा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह अन्तर शताब्दियों में ही सम्भव हुआ होगा। इसे निम्नलिखित उदाहरणों से देख सकते है -

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तधिया वयम्।

नमो भरन्त एमसि ॥

- ऋग्वेद; १-१-७

- हे अग्नि ! हम प्रतिदिन प्रातः सायं बुद्धिपूर्वक प्रणाम करते हुए तुम्हारे पास आते हैं।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥

- तैत्तिरीयोपनिषद् ; नवम अनुवाक

यहाँ पर प्रथम उदाहरण ऋग्वेद का है और दूसरा तैत्तिरीयोपनिषद् का | ऋग्वेद के उदाहरण की भाषिक प्राचीनता बिना कहे भी स्पष्ट है। ऋग्वेद को छन्दस् भी कहा गया है, क्योंकि उसकी रचना छन्दोबद्ध है। वेदों की तुलना में ब्राह्मण ग्रन्थों की महत्ता कई दृष्टियों से है जिनमें एक यह भी है कि ब्राह्मण-ग्रन्थ मुख्यतः गद्य में हैं, इसलिए उनसे वाक्य-रचना की प्रणाली को जानने में सहायता मिलती है। वह सुविधा छन्द में सम्भव नहीं, क्योंकि उसमें छन्द के अनुरोध से शब्दों का क्रम परिवर्तित हो जाया करता है।

ऋग्वेद के संदर्भ में विद्वानों की यह धारणा बनी हुई है कि जिस भाषा में ऋग्वेद की रचना हुई है, वह बोल-चाल की भाषा न होकर उस समय की परिनिष्ठित, साहित्यिक भाषा थी। परन्तु लिखित साहित्य उपलब्ध न होने से उसे जानने का आज कोई साधन नहीं है। वैदिक भाषा से ही संस्कृत का विकास हुआ है। संस्कृत का विकास वैदिक के बदले तद्युगीन किसी बोली से हुआ है जो अनेक कारणों से महत्वपूर्ण बन गयी। इस स्थिति को समझने के लिए खड़ीबोली का उदाहरण ले सकते हैं। खड़ीबोली मेरठ के आस-पास के कुछ जिलों में बोली जाती है, परंतु यहाँ राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक आदि कारणों से वह अन्य बोलियों की

तुलना में आगे निकल गयी और आज सम्पूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा बन गयी है। खड़ीबोली के राष्ट्रभाषा या साहित्यिक भाषा होने का अर्थ यह नहीं होता है कि दूसरी बोली या भाषाएँ नहीं हैं । बोलियाँ तो अनेक हैं, लेकिन जिस प्रकार से महत्ता खड़ी बोली को मिली है वह अन्यों भाषा को प्राप्त नहीं हुई । इसी तरह संस्कृत भी समसामयिक इतर भाषाओं की तुलना में आगे निकल गयी और भारत की सांस्कृतिक भाषा बन गयी | संस्कृत शब्द से वैदिक का भी बोध होता है। संस्कृत उस समय की शिष्ट भाषा थी जो बोलचाल के अतिरिक्त साहित्य-रचना का भी माध्यम थी। उसमें अभि-व्यंजना की ऐसी विशेषताएँ आ गई कि हज़ारों वर्षों के बाद भी वह अपना स्थान बनाए रखी हुई हैं ।

वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में संस्कृत का यह रूप मिलता है। इनमें भाषा को लेकर एक सुनिश्चित रूप दिखाई नहीं देता है। जिस तरह से वैदिक साहित्य में इस भाषा का विकास होता दिखाई पड़ता है, फिर भी यहाँ पर कुछ ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक बातें ऐसी हैं जिसे वैदिक की सामान्य विशेषताएं मान सकते है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा इसके समीप रही होगी, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि बोलचाल की भाषा के सभी रूप इसमें सुरक्षित हैं। संस्कृत की विभिन्न रूप प्रचलित हुए हैं | पाणिनि ने इसको 'प्राचाम्' (पूर्वी), 'उदिचाम्' (उत्तरी) आदि कहकर भी स्पष्ट किया हैं |

वैदिक संस्कृत में निम्नलिखित ध्वनियाँ विकसित हो चुकी हैं -

मूल स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ |

संयुक्त स्वर: ए, ऐ, ओ, औ |

व्यंजन : क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, स, श, ष, ह, ळ्, ळ्ह । विसर्ग, जिह्वा- मूलीय तथा उपध्मानीय ह के उपस्वनिम थे। अ, व, य आदि कई अन्य के भी कई उपस्वनिम थे। ळ्, ळ्ह मूर्धन्य पाश्विक प्रतिवेष्ठित थे।

स्वराघात: इसका मूल भारोपीय भाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । आरम्भ में वह बलात्मक था जिसके कारण मात्रिक अपश्रुति विकसित हुई, किन्तु बाद में वह संगीतात्मक हो गया जिसने गुणिक अपधुति को जन्म दिया। इस भाषा परिवार के विघटन के समय स्वराघात केवल उदात्त तथा स्वरित था। भारत-ईरानी स्थिति में अनुदात्त भी विकसित हो गया। इस प्रकार वैदिक संस्कृत को परम्परागत रूप से अनुदात्त, उदात्त एवं स्वरित तीन प्रकार के स्वराघात (संगीतात्मक) प्राप्त हुए थे। स्वराघात का इतना अधिक महत्त्व था कि सभी संहिताओं, कुछ ब्राह्मणों एवं आरण्यकों तथा बृहदारण्यक आदि कुछ उपनिषदों की पाण्डुलिपि स्वराघात-चिह्नित मिलती है और बिना स्वराघात के वैदिक छन्दों को पढ़ना अशुद्ध माना जाता है । स्वराघात के कारण शब्द का अर्थ भी बदल जाता था। स्वराघात में परिवर्तन से कभी-कभी लिंग में भी परिवर्तन हो जाता था। स्वराघात के संदर्भ में टर्नर का कथन हैं कि "वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों ही स्वराघात था ।"

रूप-रचना: रूप - रचना की दृष्टि से वैदिक संस्कृत तथा वैदिक भाषा में तीन लिंग - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग और वचन भी तीन थे - एक वचन, द्वि. वचन, बहु. वचन | कारक-विभक्तियाँ - कर्ता, सम्बोधन, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण

आदि आठ रही हैं | मूल भारोपीय में सर्वनाम के मूल या प्रातिपदिक बहुत अधिक थे। विभिन्न बोलियों में कदाचित् विभिन्न मूलों के रूप चलते थे। पहले सभी मूलों से सभी रूप बनते थे, बाद में मिश्रण हुआ और अनेक मूलों के अनेक रूप लुप्त हो गए। अनेक मूलों से बने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे।

वैदिक भाषा में उत्तम पुरुष में ही यद्यपि प्राचीन पंडितों ने 'अस्मद्' को सभी रूपों का मूल माना है, परन्तु ध्यान से देखा जाय तो अह - (अहम्), म - (माम्, मया, मम, मयि), आव - (आवम्, आवाम्, बाम्, आवयोः), वय - (वयं), अरम - (अस्माभिः अस्मभ्यम्, अस्मे आदि) इन पांच मूलों पर आधारित रूप हैं। मध्यम आदि अन्य सर्वनामों में भी एकाधिक मूल हैं। वैदिक भाषा में धातुओं के रूप आत्मने तथा परस्मै, दो पदों में चलते थे। कुछ धातुएँ आत्मनेपदी, कुछ परस्मैपदी एवं कुछ उभयपदी थीं। आत्मनेपदी रूपों का प्रयोग केवल अपने लिए होता था तथा परस्मै का प्रयोग दूसरों के लिए। क्रियारूप तीनों वचनों (एक, द्वि, बहु) एवं तीनों पुरुषों (उत्तम, मध्यम, अन्य) में होते थे | काल तथा क्रियार्थ मिलाकर क्रिया के कुल ११ प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है : लट्, लङ, लिट्, लुङ, लुट्, निश्चयार्थ, सम्भावनार्थं (लेट्), विध्यर्थ, आदरार्थ, आज्ञार्थ, तथा आज्ञार्थ (लोट्)।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में लेट् का प्रयोग बहुत मिलता है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त में लौकिक संस्कृत में पूर्णतः समाप्त हो गया। वैदिक में भविष्य के रूप बहुत कम हैं। उसके स्थान पर प्रायः सम्भावनार्थं या निवार्य का प्रयोग मिलता है।

समास: मूल भारोपीय एवं भारत-ईरानी में इस रचना की प्रवृत्ति थी। उधर से ही यह परम्परा वैदिक संस्कृत में आ गई। वैदिक समस्तपद प्रायः दो शब्दों के ही मिलते हैं। इससे अधिक शब्दों के समास अत्यन्त विरल हैं | जहाँ तक समास के रूपों का प्रश्न है, वैदिक में केवल तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं द्वन्द्व आदि चार समास मिलते हैं। लौकिक संस्कृत के शेष दो समास बाद में विकसित हुए हैं।

शब्द: शब्दों की दृष्टि से यहाँ पर दो बातें उल्लेखनीय है। एक तो यह कि अनेक तथाकथित तद्भव या मूल शब्द से विकसित शब्द प्रयुक्त होने लगे। वेद पे 'इह' (यहाँ) इसी प्रकार का है। इसका मूल शब्द ‘इध’ है। पालि 'इधों' और अवेस्ता 'इद' इसी बात के प्रमाण हैं कि महाप्राण व्यंजन के स्थान पर 'ह' के विकास से 'इध' से ही 'इह्' बना है। शब्दों की दृष्टि से इस काल में अनेक आर्येतर शब्दों का आगमन होने लगा था। जैसे - वैदिक भाषा में अणु, अरणि, कपि, काल, गण, नाना, पुष्कर, पुष्प, मयूर, अटवी, तंडूल, मर्कट आदि शब्द एक ओर यदि द्रविड़ से आए हैं, तो वार, कंबल, बाण, कोसल (स्थानवाची नाम), अंग (स्थानवाची नाम) आदि आँस्ट्रिक भाषा से आए हैं |

बोलियाँ: वैदिक काल में प्राचीन आर्यभाषा के कम-से-कम पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी आदि तीन रूप या तीन बोलियां थी। इसमें यदि र्-ल् ध्वनियों को ही आधार मानें तो कह सकते हैं कि पश्चिमोत्तरी बोली र्-प्रधान थी, मध्यवर्ती में र्-ल् दोनों थे, और पूर्वी ल-प्रधान थी। ऋग्वेद में पश्चिमोत्तरी बोली का ही प्रतिनिधित्व हुआ है। पश्चिमोत्तरी बोली में स्थानीय प्रभाव प्रायः बहुत कम पड़ा था, क्योंकि स्थानीय आर्येतर जातियाँ कुछ अपवादों को छोड़कर वहाँ से भाग कर दक्षिण तथा पूरब चली गई थीं। इसी कारण पश्चिमोत्तरी बोली को आदर्श माना गया। उसे उस समय 'उदीच्य' भी कहते थे।

१.२.२ संस्कृत या लौकिक संस्कृत : (८०० ई. पू. से ५०० ई. पू. तक)

लौकिक संस्कृत को प्राय: 'संस्कृत' ही कहा जाता है | इसका कालखण्ड हैं ८०० ई. पू. से ५०० ई. पू. तक हैं | भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। संस्कृत या लौकिक संस्कृत महाभारत, पुराण, काव्य, नाटक आदि ग्रंथों में आज तक अपना गौरव स्थापित किए हुई हैं | यास्क, कात्यायन, पंतजलि आदि के लेखों से सिद्ध हो जाता है की ईसा पूर्व तक संस्कृत एक लोक-व्यवहार की भाषा थी | वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूपों का अर्थात उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी का उल्लेख किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार उत्तरी बोली थी, क्योंकि वही एक प्रामाणिक मानी जाती थी । पाणिनि ने अन्यों के भी कुछ रूप लिये हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्यदेशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है।

संस्कृत साहित्य आर्य - जाती का प्राण रहा हैं | इसी संस्कृत में प्राचीन ज्ञान, विज्ञान उपलब्ध हैं | इसीलिए संस्कृत ने भारतीय भाषाओं को अनुप्राणित न करते हुए विश्व की भाषाओं को भी प्रभावित किया हैं | लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है। जिस प्रकार से प्रसाद जी की भाषा का आधार मानक खड़ीबोली हिन्दी है जो बोलचाल की भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित-समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनि द्वारा उसके लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बाँधने के लिए कात्यायन द्वारा वार्तिकों की रचना, ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा अवश्य थी। अतः हार्नले, वेबर तथा ग्रिर्यसन आदि पश्चिमी विद्वानों का यह कथन हैं कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं थी, निराधार है।

यहाँ पर वैदिक और लौकिक संस्कृत में क्या अंतर हैं उसे देख लेते हैं :

(१) वैदिक भाषा का, लौकिक की तरह मानकीकरण (standardization) नहीं हुआ था, इसी कारण लौकिक, जिस रूप में एकरूप एवं साहित्यिक है, वैदिक नहीं है।

(२) वैदिक में जहाँ मानकीकरण एवं नियमन न होने से रूप की जटिलताएँ है, अनेकरूपताओं एवं अपवादों का आधिक्य है, लौकिक में वे या तो हैं ही नहीं, या हैं भी तो वैदिक की तुलना में बहुत ही कम।

(३) वैदिक में 'लृ' 'ऋ' ' ॠ' के उच्चारण स्वरवत् होते थे। संस्कृत में आकर ये कदाचित् 'लि', 'रि', 'री' जैसे उच्चरित होने लगी थीं।

(४) ऐ, औ के उच्चारण वैदिक में आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में ये 'अइ', 'अउ' हो गए।

(५) ए, ओ का उच्चारण वैदिक में 'अइ', 'अउ' था, अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे, किन्तु संस्कृत ये मूल स्वर हो गए।

(६) लेखन में ळ् ळ्ह अक्षर समाप्त हो गए, और इनके स्थान पर ड, ढ प्रयुक्त होने लगे।

(७) कई ध्वनियों के उच्चारण-स्थान में अन्तर आ गया। उदाहरणार्थ, प्रातिशाख्यों से पता ललता है कि वैदिक त वर्ग ल्, स् दंतमूलीय थे, किन्तु संस्कृत में (लतुलसानांदन्ताः) ये दंत्य हो गए।

(८) वैदिक में संगीतात्मक स्वराघात था। इसके विरुद्ध लौकिक संस्कृत में संगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर कदाचित् बलात्मक स्वराघात विकसित हो गया। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बलात्मक स्वराघात के बीज यहीं मिलने लगते हैं।

(९) क्रियारूपों में कुछ प्रमुख अन्तर ये हैं :

(क) वैदिक में लकारों में विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। लुङ, लङ, लिट में परोक्षादि का भेद नहीं है। यहाँ तक कि कभी-कभी इनका कालेतर प्रयोग भी मिलता है। किंतु संस्कृत में ऐसा नहीं है। वैदिक का लेट् लौकिक में नहीं है, यद्यपि उसके उत्तम पुरुष के तीन रूप लौकिक के लोट् में आ गए हैं। वैदिक में लङ, लुड़, लृड़ में भूतकरण (augment) अ- नहीं मिलता, यद्यपि लौकिक में यह आवश्यक है।

(ङ) वैदिक में लिट् वर्तमान के अर्थ में था, किन्तु लौकिक में वह परोक्ष भूत के लिए आता है।

(१०) समासों में सबसे बड़ा अन्तर तो यह आया कि वैदिक में बहुत बड़े-बड़े समास बनाने की प्रवृत्ति नहीं थी, क्योंकि उस भाषा में कृत्रिमता नहीं है, किन्तु संस्कृत में कृत्रिमता के विकास के कारण बड़े-बड़े समस्तपद भी बनने लगे। ऐसे ही वैदिक में केवल चार समासों – तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुब्रीहि, द्वन्द्व का ही प्रयोग प्रायः मिलता है, किन्तु लौकिक में द्विगु और अव्ययीभाव भी प्रयुक्त होते हैं।

(११) मूल भारोपीय भाषा में उपसर्ग वाक्य में कहीं भी आ सकता था, क्रिया के साथ आना उसके लिए आवश्यक नहीं था। वैदिक में भी यह स्वच्छन्दता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। जैसे 'यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् मिनीमसि द्यविद्यवि'। यहाँ 'प्र' उपसर्ग 'मिनीमसि' से सम्बन्धित है। किन्तु इन दोनों के बीच तीन शब्द आए हैं। लौकिक संस्कृत में उपसर्ग की यह स्वच्छन्दता नहीं मिलती।

(१२) वैदिक में विजातीय शब्द आए थे- विशेषतः द्रविड़ एवं ऑस्ट्रिक से, किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या बहुत बढ़ गई (लगभग २ हजार)।

बोलियाँ - वैदिक भाषा के प्रसंग में पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी तथा पूर्वी, इन तीन बोलियों का उल्लेख किया जा चुका है | संस्कृत-काल में आर्य भाषा-भाषी प्रदेश में कदाचित एक दक्षिणी रूप भी जन्म ले चुका था |

१.३ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा : (५०० ई. पू. - १००० ई.)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा में यह संकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में जनभाषा पर आधारित 'वैदिक' एवं 'लौकिक संस्कृत' भाषा के ये दो रूप साहित्य में प्रयुक्त हुए। दूसरे रूप अर्थात लौकिक संस्कृत को पाणिनि ने अपने व्याकरण में जकड़कर उसे सदा-सर्वदा के लिए एक स्थायी रूप दे दिया हैं और वह अबाध गति से

परिवर्तित होती हुई बढ़ती रही । इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही 'मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा' की संज्ञा दी गई है। इसका कालखण्ड ५०० ई. पू. से १००० ई. तक अर्थात् डेढ़ हजार वर्षों का है ।

मध्यकालीन आर्यभाषा को प्राकृत भी कहा गया है। 'प्राकृत' शब्द के सम्बन्ध में दो मत हैं :

(क) कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति 'प्राक् + कृत' अर्थात् (संस्कृत से) ‘पहले की बनी हुई' या 'पहले की की हुई’ मानते हैं। दूसरे शब्दों में प्राकृत ‘नैसर्गिक’ 'प्रकृत या अकृत्रिम' भाषा है, और इसके विपरीत संस्कृत कृत्रिम या संस्कार की हुई भाषा है ।

नमि साधु ने 'काव्यालंकार' की टीका में लिखा है: “प्राकृतेति सकल-जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहतसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः प्रकृति तब भवः सेव वा प्राकृतम् ।” इस रूप में प्राकृत पुरानी भाषा है, और संस्कृत उसका संस्कार करके बनाई हुई बाद की भाषा ।

ग्रियर्सन ने इसी को प्राइमरी प्राकृत कहा है। इसका अर्थ यह है कि इस अर्थ में 'प्राकृत' शब्द का प्रयोग उस जनभाषा के लिए है, जो वैदिक एवं संस्कृत-काल में जनभाषा थी और जिसका कुछ परिनिष्ठित एवं पंडितों द्वारा मान्य रूप वैदिक है, एवं परवर्ती काल में जिसका सुसंस्कृत साहित्यिक रूप 'संस्कृत' है । अर्थात् वह वैदिक की भी जननी है, और उसी का कुछ परवर्ती रूप संस्कृत की जननी है।

(ख) प्राकृत की उत्पत्ति के संदर्भ में मार्कण्डेय कहते है कि “प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भव प्राकृतमुच्यते |” अर्थात प्रकृति या मूल संस्कृत है, उससे जन्मी भाषा को प्राकृत कहते हैं । हेमचन्द्र कहते है की “प्रकृतिः संस्कृतम् । तत्र भवं तदागतं वा प्राकृतम्|” अर्थात प्रकृति या मूल संस्कृत है, और संस्कृत से जो आई है, प्राकृत है।

ये दोनों मत एक-दूसरे के विरोधी हैं। यदि उस जनभाषा को प्राकृत कहते हैं जिसका परिनिष्ठित साहित्यिक रूप संस्कृत है, दूसरे शब्दों में जिससे संस्कृत उत्पन्न है तो पहला मत ठीक है, अर्थात् प्राकृत संस्कृत की जननी है, किन्तु यदि हम संस्कृत-कालीन जनभाषा को भी संस्कृत ही कहें जो मूलतः वही था, केवल संस्कृत साहित्यिक भाषा थी और वह जनभाषा तो दूसरा मत सही है, क्योंकि ५०० ई. पू. से १००० ई. तक बोली जानेवाली प्राकृत भाषा उसी का विकसित रूप है, अर्थात् उसी से निकली है। अब प्रायः इस दूसरी भाषा को प्राकृत कहते हैं, अतः इसे, अर्थात् प्राकृत को हम 'संस्कृत से उत्पन्न' मान सकते हैं। यह प्राकृत भाषा वैदिक या लौकिक संस्कृत से उद्भूत नहीं है, तत्कालीन जनभाषा से उद्भुत है या उसका विकसित रूप है । इन १५०० वर्षों की प्राकृत भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है :

(१) प्रथम प्राकृत (५०० ई. पू. से १ ई. तक) ।

(२) द्वितीय प्राकृत (१ ई. से ५०० ई. तक)

(३) तृतीय प्राकृत (५०० ई. से १००० ई. तक) ।

१.३.१ पालि : (प्रथम प्राकृत)

बुद्ध ने जिस भाषा में उपदेश दिया था, उसी भाषा को पालि कहा जाता हैं अर्थात पालि बौद्ध धर्मं की भाषा है। इसका काल ५वीं सदी ई. पू. से पहली सदी तक है। 'पालि' इस शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इसका प्राचीनतम प्रयोग ४थीं सदी में लंका में लिखित 'दीपबंस' ग्रंथ में हुआ है । लंका में इसका अर्थ 'बुद्धवचन' है। प्रसिद्ध आचार्य बुद्ध-घोष ने भी इसका प्रयोग लगभग इसी अर्थ में किया है। तब से लेकर 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है, किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ में न होते हुए मगध भाषा, मागधी, मागधिक भाषा आदि का प्रयोग हुआ है । भाषा के अर्थ में 'पालि' का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है।

यहाँ 'पालि' के संदर्भ में कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख करते है:

I. आचार्य बुद्धघोष (चतुर्थ शदी ई.) और आचार्य धम्मपाल (छठी शती ई.) ने 'पालि' शब्द का प्रयोग बुद्धवचन या मूल त्रिपिटक के लिए किया था | उससे यह शब्द 'पालि' भाषा के लिए आया हैं |

II. 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति श्री विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार संस्कृत 'पंक्ति' से पालि की उत्पत्ति इस प्रकार से बताई हैं - (पंक्ति > पन्ति > पत्ति > पट्टि > पल्लि > पालि)

III. एक मत के अनुसार वैदिक और संस्कृत आदि की तुलना में यह 'पल्लि' या 'गाँव' की भाषा थी और 'पालि' शब्द 'पल्लि' का ही विकास है, अर्थात् इसका अर्थ है 'गाँव की भाषा'।

IV. भण्डारकर तथा वाकरनागल के अनुसार 'पालि' शब्द प्राकृत > पाकट > पाअड > पाअल > पालि का ही विकसित रूप है। वस्तुतः ये ध्वन्त्यात्मक विकास बहुत तर्कसम्मत नहीं हैं।

V. कोसाम्बी नामक बौद्ध विद्वान् के अनुसार, इसका सम्बन्ध 'पाल्' अर्थात् 'रक्षा करना' से है। इसने बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रक्खा है, इसीलिए यह नाम पड़ा है 'पा पालेति रक्खतीति' रूप में भी कुछ लोगों ने 'पा' में 'लि' प्रत्यय लगाकर इसकी व्युत्पत्ति दी है। अर्थात् यह अर्थों की रक्षा करती है, अतः पालि है। किंतु यह भी कल्पना की दौड़ मात्र है।

VI. डॉ. मैक्स-वेलेसर ने 'पालि' को 'पाटलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) से व्युत्पन्न माना है। (पाटलि > पाडलि > पालि)

VII. भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा 'पालि' का सम्बन्ध 'परियाय' (सं. पर्याय) से दिया है । 'धम्म-परियाय' या 'परियाय' का प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है। इनकी विकास - परम्परा परियाय > पलियाय > पालियाय पालि है।

पालि भाषा के प्रवेश को लेकर कई विद्वानो ने अपने-अपने मत को दर्शाया हैं :

I. श्रीलंका के बौद्धों तथा चाइल्डर्स आदि की यह धारणा है कि यह मगध की बोली थी। किन्तु भाषा की विवेचना करने पर यह बात अशुद्ध ठहरती है। ध्वनि और व्याकरण की दृष्टि से इसका मागधी से साम्य नहीं है।

II. वेस्टरगार्ड तथा स्टेनकोनो आदि पालि को उज्जयिनी या विध्यप्रदेश की बोली पर आधारित मानते हैं।

III. ग्रियर्सन ने इसे मागधी माना था, यद्यपि इस पर पैशाची का भी प्रभाव स्वीकार किया था।

IV. ओल्डेनबर्ग ने पालि को कलिंग की भाषा कहा था। रीज़ डैविड्ज़ ने इसे कोसल की बोली कहा है।

V. ल्युडर्ज यूट पानि को पुरानी अर्धमागधी से संबद्ध मानते थे।

इन मतों से एक बात यह स्पष्ट होती है कि पालि में विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के तत्त्व हैं, इसी कारण विभिन्न लोगों ने इसे विभिन्न स्थानों से संबद्ध किया है। वस्तुतः मूल में पालि मध्यप्रदेश की भाषा है। उस समय वह पूरे भारत में एक अंतःप्रांतीय भाषा जैसी थी, इसी कारण उसमें अनेक प्रादेशिक बोलियों, विशेषतः बुद्ध की भाषा होने से मागधी के भी कुछ तत्त्व मिल गए। इस प्रकार से मूल रूप में पालि को शौरसेनी प्राकृत का पूर्वरूप मान सकते हैं।

साहित्य: पालि साहित्य का रचना-काल ४८३ ई.पू. से लेकर आधुनिक काल तक लगभग ढाई हज़ार वर्षों का रहा है। यहाँ पालि साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान् बुद्ध से है, यो कोष, छन्दशास्त्र तथा व्याकरण की भी कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं। परम्परागत रूप से पालि साहित्य को पिटक और अनुपिटक दो वर्गों में बांटते हैं, जिनमें जातक, धम्मपद, मिलिन्द पन्हों, बुद्धघोष की अट्ठकथा तथा महावंश आदि प्रमुख हैं।

ध्वनियाँ: पालि के प्रसिद्ध वैय्याकरण कच्चायन के अनुसार पालि में ४१ ध्वनियां थी - अखरापादयो एकचत्तालीस दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण मोग्गलान के अनुसार ४३ ध्वनियाँ थीं- 'अभावयो तितालिस वण्णा'।

ध्वनि-विषयक इसकी मुख्य बातें है:

(१) स्वरों में ह्रस्व ऍ, ओ दो नए विकसित हो गये।

(२) स्वर पूर्णतः समाप्त हो गये | ऐ औ स्वर नहीं रहे।

(३) व्यंजनों में वैदिक की तरह ही, पानि में भी छ, ध्वनियाँ थीं।

(४) विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय भी नहीं रहे।

(५) वैदिक तथा संस्कृत में श्, ष्, स् तीन थे। पालि में तीनों के स्थान में सु हो गया।

(६) अनुस्वार पालि में स्वतन्त्र ध्वनि है, जिसे पालि वैयाकरण के निहीत नाम से अभिहित किया है।

(७) ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से घोषीकरण, अघोषीकरण, महाप्राणीकरण, समीकरण इ- ‘ल’ का आपसी परिवर्तन, महाप्राण का ‘ह’ हो जाना आदि की प्रवृत्ति मिलती है।

स्वराघात - यहाँ स्वराघात की स्थिति विवादास्पद है। टर्नर के अनुसार, पालि में वैदिकी की भाँति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक, दोनों स्वराघात था। ग्रियर्सन पालि में केवल बलात्मक स्वराघात मानते हैं। जल ब्लाक को पालि में किसी भी स्वराघात के होने के बारे में सन्देह है। अंतः पालि में मुख्यतः बलात्मक स्वराघात ही था, यद्यपि संगीतात्मक के भी कुछ अवशेष रहने की सम्भावना है।

व्याकरण - पालि भाषा व्याकरणिक दृष्टि से वैदिक संस्कृत की भाँति ही स्वच्छंद एवं विविध रूपोंवाली है किन्तु साथ ही वैदिक या संस्कृत की तुलना में उसमें पर्याप्त सरलीकरण भी हुआ है। यह सरलीकरण उच्चारण में समीकरण आदि के रूप में तो हुआ ही है, साथ ही सादृश्य के आधार पर विकास के कारण व्याकरण के क्षेत्र में भी हुआ है।

(१) व्यंजनांत प्रातिपदिक प्रायः नहीं है। अंत्य व्यंजन- लोप के सामान्य नियम के कारण या तो अंत्य व्यंजन लुप्त हो गये हैं (विद्युत > विज्जु) या अंत्य स्वरागम के कारण शब्द - स्वरांत (शरत्-सरद) हो गए हैं।

(२) सादृश्य के कारण भिन्न-भिन्न स्वरांत शब्दों के बहुत से रूप भी समान हो गए हैं। इस दिशा में अकारांत शब्दों ने अपने प्रयोग-बाहुल्य के कारण अन्यों को प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ, इकारांत (अग्गि), उकारांत (भिक्खु) के सम्प्रदान एवं सम्बन्ध के रूप अकारांत के समान (अग्गिस्स, भिक्खुस्स) मिलते हैं।

(३) लिंग तीन हैं। यों अपने बहुप्रयोग के कारण पुल्लिंग ने नपुंसकलिंग को प्रभावित किया है जैसे 'सुख' के लिए 'सुखो'।

(४) द्वे, उभो जैसे दो-एक रूपों को छोड़कर पालि में द्विवचन नहीं है।

(५) वैदिक की तरह रूपाधिक्य भी पालि में है। उदाहरणार्थ, धर्म का सं. में सप्तमी एक. में केवल 'धर्मे' होगा, किन्तु पालि में धम्मे के अतिरिक्त धम्मस्मि तथा धम्मम्हि भी है।

(६) पालि सर्वनाम प्राय: पूर्ववर्ती सर्वनाम रूपों के ही ध्वनि नियमों के अनुकूल विकसित हैं। इनमें एक ही अन्तर है, और वह मामूली नहीं है कि वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में, सारे के सारे मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप 'य' से शुरू होते हैं, किन्तु पालि में सारे के सारे 'त' से शुरू होते हैं। जैसे युष्मे - तुम्हें, युष्माकम् —तुम्हाकं, आदि।

(७) क्रियारूपों में ३ पुरुष तथा २ वचन (द्वि नहीं है) हैं। पद केवल परस्मै है। आत्मने कुछ अपवादों को छोड़कर नहीं है। धातुओं के दसों गण है, यद्यपि संस्कृत की तुलना में कुछ मिश्रण हो गया है। एक ही धातु के कुछ रूप एक गण के समान हैं तो कुछ दूसरे के। इससे पता चलता है। कि जन-मस्तिष्क में गणों की सत्ता धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी।

बोलियाँ एवं भाषा का रूप: पालि के समय आर्यभाषी भारत में चार बोलियाँ थीं, जिनका उल्लेख लौकिक संस्कृत में किया जा चुका है - पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी। संस्कृत-काल की तुलना में उनके अंतर कुछ और उभर आए थे।

प्रथम प्राकृत के अन्तर्गत पालि के अतिरिक्त अभिलेखी प्राकृत भी आती है । इसके अधिकांश लेख शिला पर हैं, अतः इसकी एक संज्ञा शिलालेखी प्राकृत भी है। इसकी सामग्री है - (१) अशोकी अभिलेख, (२) अशोकेतर अभिलेख | अशोकी अभिलेखों से ३ सदी ई. पू. में एवं अशोकेतर से ई. पु. की अंतिम तीन सदियों में भाषा की स्थिति तथा स्वरूप का पता चलता है। साथ ही उस काल में मानक भाषा की कम-से-कम चार बोलियाँ थीं - पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी-पश्चिमी, मध्यपूर्वी, पूर्वी।

१.३.२ प्राकृत - (१ ई. - ५०० ई. तक)

'प्राकृत' शब्द की उत्पत्ति के संदर्भ में विचार करने पर यह ज्ञात होता हैं कि जनभाषा का संस्कार करके जब उसे 'संस्कृत' संज्ञा से विभूषित किया गया तो वह जनभाषा, जो उसकी तुलना में असंस्कृत थी, और पण्डितों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध, जो 'प्रकृत' या सामान्य लोगों में बोली जाती थी, वह 'प्राकृत' नाम की अधिकारिणी बन बैठी।

'प्राकृत' शब्द के दो अर्थ हो जाते हैं - पहले अर्थ में यह ५ वीं सदी ई. पू. से १००० ई. तक की भाषा है, जिसमें प्रथम प्राकृत में 'पालि' और 'अभिलेखी प्राकृत' है; द्वितीय प्राकृत में भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृत है, तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश (अवहट्ठ) आती हैं। दूसरे, केवल द्वितीय प्राकृत के लिए भी प्राकृत नाम का प्रयोग होता है। यहाँ, 'प्राकृत' शब्द इसी दूसरे अर्थ में प्रयोग किया जाता हैं।

प्राकृतों के भेद:

यहाँ पर लेखन आधार, प्रदेश, धर्म और प्रयोग आदि के आधार पर प्राकृतों के भेद किए हैं जिनमें से मुख्य शौरसेनी, पैशाची, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, आदि हैं। इनकी संक्षिप्त जानकारी नीचे दी गई हैं।

१. शौरसेनी:

यह प्राकृत का क्षेत्र शूरसेन प्रदेश याने मथुरा के आसपास की बोली की थी। इसका विकास पालिकालीन स्थानीय भाषा से हुआ। यह मध्यदेश की भाषा थी | और मध्यदेश संस्कृत का ही केन्द्र था, इसी कारण शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित रही है । इस प्रभाव के कारण शौरसेनी में अपेक्षाकृत प्राचीनता है तथा यह कुछ कृत्रिम है। संस्कृत नाटकों की गद्य की भाषा शौरसेनी ही है। इसीकारण संस्कृत के नाटकों में इसका अधिक प्रयोग मिलाता हैं | राज शेखर कृत 'कर्पूरमंजरी' का गद्य भाग शौरसेनी में ही प्रस्तुत है। भास, कालिदास आदि के नाटको में गद्य शौरसेनी में ही हैं | इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। जैनों (दिगम्बर सम्प्रदाय) ने अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के लेखन में भी इसका प्रयोग किया है। शौरसेनी में तत्सम शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं।

इसकी प्रमुख विशेषताएँ :

(१) शौरसेनी में दो स्वरों के बीच में आनेवाला संस्कृत के 'त्' को 'द्' हो गया है और 'थ्' का 'ध्' (गच्छति > गच्छदि, कथं > कधं) ।

(२) 'क्ष्' का विकास 'क्ख्' में हुआ है (इक्षु > इक्खु, कुक्षि > कुक्खि)| यह उल्लेख्य है कि माहाराष्ट्री में यह 'च्छ्' (इक्षु > उच्छु) हो जाता है।

(३) ऋ का विकास इ है : (गृद्ध > गिद्ध) ।

(४) संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति है, किन्तु अर्द्धमागधी या माहाराष्ट्री आदि से कम (कर्तुम > कादु, उत्सव > उस्सव > ऊसव) । यह भी उल्लेख्य है कि ऐसी स्थिति में क्षतिपूरक दीर्घीकरण (अ > आ, उ > ऊ) की प्रवृत्ति भी है।

(५) मध्यगत महाप्राण ख, घ, थ, ध, फ, भ, को 'ह' हो जाता हैं | (मुख > मुह, मेघ > मेह, वधू > वहू, अभिनव > अहिणव) |

(६) 'न' को 'ण' हो जाता हैं | (नाथ > णाध, भगिनी > बहिणी) |

(७) केवल परस्मैपद का प्रयोग मिलता है, आत्मनेपद का प्रायः नहीं ।

(८) रूपों की दृष्टि से यह कुछ बातों में संस्कृत की ओर झुकी है, जो मध्यदेश में रहने का प्रभाव है, किन्तु साथ ही, माहाराष्ट्री का भी इससे काफ़ी साम्य है ।

२. पैशाची:

महाभारत में कश्मीर के पास रहनेवालि 'पिशाच' जाति का उल्लेख है। पैशाची के संदर्भ में विद्वान कहते हैं कि ग्रियर्सन पैशाची को वहीं की 'दरद' से प्रभावित भाषा मानते हैं । हार्नले इसे द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत मानते हैं। पुरुषोत्तम देव ने अपने प्राकृतानुशासन में संस्कृत और शौरसेनी का इसे विकृत रूप माना है। इस प्रकार इसको लेकर काफ़ी विवाद है। पैशाची में इस समय साहित्य नगण्य है । गुणाढ्य का 'बृहत्कथा' संग्रह मूलतः इसी में था। इसके अब केवल दो संस्कृत रूपांतर ही - 'बृहत्कथामंजरी', 'कथासरित्सागर' शेष हैं। हम्मीरमर्दन नाटक तथा कुछ अन्य नाटकों में कुछ पात्रों ने इसका प्रयोग किया है।

इसकी मुख्य विशेषता है:

(१) दो स्वरों के बीच में आने वाले स्पर्श वर्गों के तीसरे और चौथे घोष व्यंजनों का क्रमश: पहला और दूसरा अर्थात् अघोष हो जाना - गगन > गकन, मेघ: > मेखो, दामोदर > तामोतर, राजा > राचा। किसी भी भाषा में अघोषीकरण के कुछ उदाहरण तो मिलते हैं, किन्तु ऐसी सामान्य प्रवृत्ति नहीं मिलती।

(२) पैशाची में पंचम वर्ण केवल 'न' हैं |

(३) माध्यमगत व्यंजनों का लोप नहीं होता | (मधुरं > मथुरं, गाढं > कांठ)|

३. माहाराष्ट्री:

प्राकृत के सभी प्राचीन व्याकरणों में महाराष्ट्री को ही प्राकृत माना हैं | महाराष्ट्री नाम से ज्ञात हो जाता हैं कि अपने समय में यह महान राष्ट्र की राष्ट्रीय भाषा थी | इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। और शुद्ध शब्द महाराष्ट्री हैं | इससे मराठी भाषा का विकास हुआ हैं| जूल ब्लाक ने भी मराठी का विकास इसी के बोलचाल से माना है। कुछ लोग इसे केवल महाराष्ट्र तक सीमित न मानकर महाराष्ट्र, अर्थात् पूरे भारत की भाषा मानने के पक्ष में हैं। कुछ लोग इसे काव्य की कृत्रिम भाषा मानते रहे हैं। माहाराष्ट्री प्राकृत साहित्य की दृष्टि से बहुत धनी है । यह काव्य भाषा रही है। हाल कृत 'गाहा सत्तसई', प्रवरसेन कृत 'रावणवहो' तथा जयवल्लभ कृत 'वज्जालग्ग' आदि इसकी अमर कृतियाँ हैं।

माहाराष्ट्री की प्रमुख विशेषताएँ:

(१) दो स्वरों के बीच आनेवाले अल्पप्राण स्पर्श (क्, त्, प, द्, ग्, आदि प्रायः लुप्त हो गए हैं (प्राकृत > पाउअ, गच्छति > गच्छइ) |

(२) उसी स्थिति में महाप्राण स्पर्श (ख्, थ्, फ्, ध्, घ्, भ्) का केवल 'ह' रह गया है (क्रोध: > कोहो, कथयति > कहेइ, मुख > मुह) |

(३) ऊष्म ध्वनियों (स श) का प्रायः 'ह' हो गया है (तस्य > ताह, पाषाण > पाहाण) ।

(४) महाराष्ट्री प्राकृत की उल्लेखनीय विशेषता है - स्वर बाहुल्य | मध्यगत व्यंजनों के लोप से स्वरों की प्रधानता रही हैं | अतएव इसमें संगीतात्मकता हैं |

(५) माध्यमगत 'य' का सदा लोप होता हैं | (प्रिय > पिअ, वियोग > विओअ)|

४. अर्धमागधी:

अर्धमागधी का क्षेत्र मागधी और शौरसेनी के मध्य में है | अर्थात यह प्राचीन कोसल के आसपास की भाषा है। इसमें मागधी के अधिक गुण मिलते हैं | साथ ही शौरसेनी के भी गुण हैं | इसीलिए इसे अर्धमागधी कहा जाता हैं | इस भाषा को ऋषियों की भाषा या आर्यभाषा भी कहा जाता हैं | भगवान महावीर सारे धर्मोपदेश इसी भाषा में रहे हैं | इसमें प्रचुर मात्रा में जैन साहित्य मिलता हैं | इसका प्रयोग प्रमुखतः जैन साहित्य में हुआ है। इसीकारण अर्धमागधी का महत्व जैन-साहित्य के कारण अधिक हुआ हैं |

इसकी विशेषताएं है:

(१) 'ष', 'श' के स्थान पर प्राय: 'स' (श्रावक > सावग, वर्ष > वास) का प्रयोग।

(२) अनेक स्थलों पर दंत्य ध्वनियों का मूर्धन्य हो जाना (स्थित - ठिय, कृत्वा - कट्टु) । यह प्रवृत्ति अन्य प्राकृतों की तुलना में इसमें अधिक है।

(३) 'च' वर्ग के स्थान पर कहीं-कहीं 'त' वर्ग मिलता है (चिकित्सा > तेहच्छा) |

(४) जहाँ कुछ अन्य प्राकृतों में स्वरों के बीच स्पर्श का लोप मिलता है, वहाँ इसमें 'य' श्रुति मिलती हैं | जैसे - सागर > सायर, स्थित > ठिय।

(५) गद्य और पद्य की भाषा के रूपों में अन्तर है। गद्य में मागधी की तरह 'ए' का प्रयोग हुआ है, और प्रायः पद्य में शौरसेनी के समान 'ओ' का होता हैं |

५. मागधी:

मागधी का मूल आधार मगध के आसपास की भाषा है। अर्थात यह मगध की भाषा हैं | लास्सन माहाराष्ट्री एवं मागधी को एक मानते थे। कुछ विद्वान इसका सम्बन्ध महाराष्ट्र से मानते हैं। मागधी में कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिलती। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते हैं। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष में मिलता है। लंका में पालि को 'मागधी' कहते हैं, क्यौकि पालि मगध से वहा गई थी | इसके तीन प्रकार मिलते हैं - शाकारी, चाण्डाली, शाबरी | मागधी से ही भोजपुरी, मैथिलि, बंगला, उड़िया और असमी विकसित हुई हैं |

इसकी प्रमुख विशेषताएँ है:

(१) इसमें 'स्', 'ष्' के स्थान पर 'श्' मिलता है | जैसे - सप्त > शत, पुरुष > पुलिश

(२) इसमें 'र' का सर्वत्र 'ल' हो जाता है | जैसे - राजा > लाजा |

(३) प्रथमा एकवचन में संस्कृत 'अ:' के स्थान पर यहाँ 'ए' मिलता है | जैसे - देवः > देवे, सः > शे।

(४) मध्यगत 'च्छ' को 'श्च' होता हैं | जैसे - गच्छति > गश्चदि |

इस तरह से प्राकृत के भेद हैं |

१.३.३ अपभ्रंश : तृतीय प्राकृत - (५०० ई. से १००० ई.):

अपभ्रंश अर्थात तृतीय प्राकृत का कालखण्ड ५०० ई. से १००० ई. तक रहा हैं | इसका अर्थ है 'गिरा हुआ', 'बिगड़ा हुआ'। प्राकृत की तुलना में भी जिस भाषा में ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हो गया था, उसे पंडितों ने 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' ('अपभ्रष्ट') नाम दिया हैं। अपभ्रंश प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है। परंतु कुछ विद्वान यह मानते है कि अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी नहीं है, प्राकृतकालीन ही एक क्षेत्रीय भाषा है, या एक प्राकृत है। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है तथा हर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का जन्म किसी-न-किसी अपभ्रंश से हुआ है। भाषा के अर्थ में 'अपभ्रंश' नाम का प्रयोग छठी सदी से मिलने लगता है।

'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग सबसे पहले 'महाभाष्य' में मिलता हैं | उसेक बाद भामह, दंडी आदि ने काव्य-भाषाओं में अपभ्रंश का उल्लेख किया हैं | मार्कण्डेय ने नागर, ब्राचड़ और उपनागर - तीन ही अपभ्रंशों की चर्चा की है। इनमें नागर की गुजरात में, ब्राचड़ की सिन्ध में और उपनागर की दोनों के बीच में स्थिति बतायी गयी है। यहाँ पर मार्कण्डेय ने केवल पश्चिम के सीमित भू-भाग के अपभ्रंशों को प्रस्तुत किया हैं। उनके समानान्तर भारत के अन्य भागों में भी किसी-न-किसी अपभ्रंश का व्यवहार होता होगा। इसलिए आधुनिक विद्वानों ने प्रत्येक प्राकृत से अपभ्रंश का उद्भव माना है । इन विभिन्न अपभ्रंशों से ही आधुनिक भारतीय

आर्यभाषाओं का उद्भव हुआ है। इसलिए अपभ्रंश प्राकृतों और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच में संबध जोड़नेवाला रहा है।

बोलियाँ: बोलियों के संदर्भ में 'प्राकृत-सर्वस्व' ग्रंथ में अपभ्रंश के कुल २७ भेद स्वीकार किए गए हैं | परंतु यहाँ मुख्य अपभ्रंश केकय, टक्क, व्राचड, शौरसेनी, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी मानी जा सकती हैं, जिनका उल्लेख पीछे प्राकृतों के प्रसंग में किया गया है। डॉ. चटर्जी ने खस नाम की एक अपभ्रंश की भी कल्पना की है जिसका स्थान पर्वतीय क्षेत्रों में माना है। याकोबी ने अपभ्रंश के चार भेद, तगारे ने तीन भेद तथा नामवर सिंह ने दो भेद किए हैं, लेकिन ये भेद साहित्य में प्रयुक्त भाषा के आधार पर किए गए हैं। प्राकृतों और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी के रूप में अपभ्रंश के ६-७ भेद माने जाते हैं।

अपभ्रंशों की सामान्य विशेषताएँ:

(१) 'अ' का पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशो में संवृत-विवृत का भेद था।

(२) 'ऋ' का लिखने में प्रयोग था, किन्तु उसका उच्चारण 'रि' होता था।

(३) 'श्' का प्रचार केवल मागधी में था।

(४) 'ल्' माहाराष्ट्री के साथ-साथ उड़ीसा में बोली जाने वाली मागधी एवं गुजरात, राजस्थान, बांगड, पहाड़ी में बोली जाने वाली शौरसेनी में भी था। ळ्ह का भी प्रयोग होता था।

(५) स्वरों का अनुनासिक रूप (ऋ का नहीं) प्रयुक्त होने लगा था।

(६) संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था। बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था।

(७) अपभ्रंश एक उकार-बहुला भाषा थी। 'प्राकृत धम्मपद' ग्रंथ में भी इसकी प्रवृत्ति मिलती हैं। अपभ्रंश में यह बहुत अधिक है, जहाँ से यह ब्रजभाषा या अवधी आदि को मिली है | जैसे - एक्कु, कारणु, पियासु, अगु, मूलु और जगु आदि।

(८) ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से जो प्रवृत्तियाँ पालि में शुरू होकर प्राकृत में विकसित हुई थीं, उन्हीं का यहाँ पर आकर विकास हो गया।

(९) 'य' का 'ज', 'म' का 'वें', 'व' का 'ब'; 'ष्ण' का 'न्ह', 'क्ष' का 'क्ख' या 'च्छ' आदि रूपों में ध्वनि-विकास की बहुत-सी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

(१०) भाषा काफ़ी वियोगात्मक हो गई।

(११) नपुंसकलिंग समाप्त हो गया।

(१२) रूपों की संख्या कम हो गई। उदाहरण के लिए, संस्कृत में एक संज्ञा के कारकीय रूप लगभग २० होते थे, अब ५-६ ही रह गए।

१.४ सारांश

प्रस्तुत इकाई में प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का विस्तार से अध्ययन किया गया हैं | यहाँ पर आर्य का भारत में आगमन होने के बाद उनकी भाषा तत्कालीन ईरानी भाषा से अलग होने से भारतीय क्षेत्र में भाषाओं का परिवर्तन होने लगा था | और यह परिवर्तन आर्य लोगों के मिश्रण से ही हो रहा था | इसका प्राचीनतम रूप वैदिक सहिंताओं में मिल जाता हैं | परंतु वैदिक सहिंताओं की भाषा काव्य की भाषा होने से तत्कालीन बोलचाल की भाषा से भिन्न थी | इसी के साथ वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि का विस्तार से छात्रों ने अध्ययन किया हैं |

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए |

२. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा को तीन कालों में विभाजित किया हैं उस पर प्रकाश डालिए |

३. वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत को रेखांकित कीजिए |

१.६ टिप्पणियाँ

१. वैदिक संस्कृत २. लौकिक संस्कृत ३. पालि

४. अपभ्रंश ५. प्राकृत

१.७. संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२. हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३. भाषा विज्ञान - डॉ. दानबहादुर पाठक ‘वर’, डॉ. मनहर गोपाल भार्गव

४. हिंदी भाषा का इतिहास - धीरेंद्र वर्मा

५. भाषा विज्ञान की भूमिका - आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

*****

२

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा

इकाई की रुपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य
२.१ प्रस्तावना
२.२ आधुनिक भारतीय आर्य भाषा
२.२.१ सिन्धी
२.२.२ मराठी
२.२.३ पंजाबी
२.२.४ गुजराती
२.२.५ बांग्ला
२.३ सारांश
२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न
२.५ टिप्पणियाँ
२.६ संदर्भ ग्रंथ

२.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओ का छात्र अध्ययन करेंगें -

- आधुनिक भारतीय भाषा को विस्तार जान सकेंगे |
- सिन्धी, मराठी, पंजाबी, गुजराती और बांग्ला आदि भाषाओं का परिचय प्राप्त होगा |

२.१ प्रस्तावना

भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ होता है 'भाषा का विज्ञान' और विज्ञान का अर्थ है 'विशिष्ट ज्ञान|' इस प्रकार से "भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहा जाता हैं |" मानव अपने भावों को व्यक्त करने या अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने के लिए जिस सार्थक मौखिक साधन का प्रयोग करता है और उससे एक नई शैली निकलती है, वही भाषा हैं | मनुष्य अपने भावों को सूक्ष्म और स्पष्ट रूप में व्यक्त करने के लिए इस साधन का प्रयोग करता है | इसी के साथ मनुष्य मनन, चिंतन और विचार करता हैं वह भी एक प्रकार का साधन भी भाषा ही हैं|

२.२ आधुनिक भारतीय आर्य भाषा : (१००० ई. से अब तक)

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का काल सन १००० ई. से वर्तमान समय तक का रहा है | इनमें प्रमुखतः भारत की वर्तमान आर्य भाषाओं की गणना की गई है। इनकी उत्पत्ति प्राकृत

भाषाओं से न होकर अपभ्रंशों से हुई थी। शौरसेनी अपभ्रंश से हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती और पहाड़ी भाषाओं का संबंध रहा है। इनमें गुजराती और राजस्थानी का संपर्क विशेषतः शौरसेनी के नागर अपभ्रंश के रूप से है। बिहारी, बंगाली, आसामी और उड़िया का संबंध मागध अपभ्रंश से है। पूर्वी हिंदी का अर्ध-मागधी अपभ्रंश से तथा मराठी का महाराष्ट्री अपभ्रंश से संबंध है। वर्तमान पश्चिमोत्तरी भाषाओं का समूह शेष रह गया। भारत के इस विभाग के लिए प्राकृतों का कोई साहित्यिक रूप नहीं मिलता। सिंधी के लिए वैयाकरणों को ब्राचड अपभ्रंश का सहारा अवश्य है। लहंदा के लिए एक केकय अपभ्रंश की कल्पना की जा सकती है। यह ब्राचड अपभ्रंश से मिलती-जुलती रही होगी। पंजाबी का संबंध भी केकय अपभ्रंश से होना चाहिए, किंतु बाद को इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव बहुत पड़ा है। पहाड़ी भाषाओं के लिए खस अपभ्रंश की कल्पना की गई है, परंतु बाद में ये राजस्थानी से बहुत प्रभावित हो गई थीं। वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं का साहित्य में प्रयोग कम से कम १३ वी शताब्दी ईसवी के आदि से प्रारंभ हो गया था | अपभ्रंश का व्यवहार १४ वीं शताब्दी तक साहित्य में होता रहा था। किसी भाषा के साहित्य में व्यवहृत होने के योग्य बनने में कुछ समय लगता है। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के अंतिम रूप अपभ्रंशों से तृतीय काल की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का आविर्भाव १० वीं शताब्दी ईसवी के लगभग हुआ होगा। इसी समय एक घटना हुई थी, १००० ईसवी के लगभग ही महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया था। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में हमारी हिंदी भाषा भी सम्मिलित थी, उसका जन्मकाल भी दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग माना जा सकता हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का सामान्य परिचय नीचे दिया गया है -

२.२.१ सिन्धी :

स्वतंत्रता के पूर्व यह भाषा भारत में सिन्ध प्रान्त की भाषा थी | इस भाषा की उत्पत्ति ब्रांचड अपभ्रंश से हुई हैं | सिंध प्रांत में सिंधु नदी के किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इस भाषा के बोलनेवाले प्रायः मुसलमान हैं, इसलिए फ़ारसी शब्दों का प्रयोग बड़ी स्वतंत्रता से होता है। सिंधी भाषा फ़ारसी लिपि के एक विकृत रूप में लिखी जाती है, यद्यपि निज के हिसाब-किताब में देवनागरी लिपि का एक बिगड़ा हुआ रूप व्यवहृत होता है। यह कभी-कभी गुरुमुखी में भी लिखी जाती है। सिंधी भाषा की पाँच मुख्य बोलियां हैं - बिचौली, सिरैकी, लाड़ी, थरेली, कच्छी। इनमें बिचौली मुख्य है। जिनमें से मध्य-भाग की 'बिचौली' बोली साहित्य की भाषा का स्थान लिए हुए है। सिंध प्रदेश में ही पूर्वकाल में ब्राचड देश था, जहां की प्राकृत और अपभ्रंश इस देश के अनुसार ब्राचडी नाम से प्रसिद्ध थीं। सिंध के दक्षिण में कच्छ द्वीप में कच्छी बोली जाती है। यह सिंधी और गुजराती का मिश्रित रूप है, यद्यपि इसमें कुछ सुधार अवश्य कर लिए गए हैं। इसमें साहित्य नाममात्र का है। उल्लेखनीय ग्रन्थ 'शाहजी रिसालो' है।

२.२.२ मराठी :

मराठी महाराष्ट्र की प्रमुख भाषा हैं | इस भाषा की उत्पत्ति महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुई हैं अर्थात दक्षिण में महाराष्ट्री अपभ्रंश की पुत्री मराठी भाषा है। मराठी भाषा में शिलालेख तथा ताम्रपत्र ९८३ ई. से मिलने लगते हैं | इसका आविष्कार महाराज शिवाजी के समय

(१६२७-८० ई.) के सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अवाजी ने किया था। मराठी का साहित्य विस्तीर्ण, लोकप्रिय तथा प्राचीन है। इसकी चार बोलियाँ मुख्य हैं –

(क) देशी - दक्षिणी भाग में बोली जाती है। इसको दक्षिणी भी कहते हैं।

(ख) कोंकणी - समुद्री किनारे की बोली है।

(ग) नागपुरी - नागपुर के समीप की बोली है।

(घ) बरारी - बरार की बोली है।

मराठी प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी और छापी जाती है। इसे 'बालबोध' भी कहा जाता हैं| नित्य व्यवहार में 'मोड़ी' लिपि का व्यवहार होता है। इसका शब्द भंडार में तत्सम, तद्भव, फ़ार्सी तथा द्रविड़ शब्दों की अधिकता दिखाई देती हैं | मराठी साहित्य उच्चकोटि का होने से इसमें मुकुंदराज, ज्ञानेश्वर, रामदास, तुकाराम, नामदेव आदि की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं | इसमें संत साहित्य का विशाल भण्डार मिलता हैं |

२.२.३ पंजाबी :

इस भाषा की उत्पत्ति पैशाची या कैकेय अपभ्रंश से हुई है और शौरसेनी का भी प्रभाव दिखाई देता हैं | पंजाबी भाषा का अधिकत्तर भाग हिंदी के ठीक पश्चिमोत्तर में है। यह पाकिस्तानी पंजाब के पूर्व भाग तथा पश्चिमी पंजाब में बोली जाती है। पंजाब के पूर्वी भाग में हिंदी का क्षेत्र है। पंजाबी भाषा 'लहंदा' से ऐसी मिली हुई है कि दोनों को अलग करना कठिन है, किंतु पश्चिमी हिंदी से इसका भेद स्पष्ट है। पंजाबी की अपनी लिपि 'लंडा' ही है। यह राजपूताने की महाजनी और काश्मीर की शारदा लिपि से मिलती-जुलती हैं। यह लिपि बहुत अपूर्ण है और इसके पढ़ने में बहुत कठिनता होती है। सिक्खों के 'गुरु अंगद' (१५३८-५२ ई.) ने देवनागरी की सहायता से इस लिपि में सुधार किया था। 'लंडा' का नया रूप 'गुरुमुखी' कहलाया । आजकल पंजाबी भाषा की पुस्तकें इसी लिपि में छपती हैं। इस इलाके में मुसलमानों की संख्या अधिक होने के कारण पंजाब में उर्दू भाषा का प्रचार बहुत था | पंजाबी भाषा का शुद्ध रूप अमृतसर के निकट बोला जाता है | इस भाषा में साहित्य अधिक नहीं हैं | सिक्खों के ग्रंथ साहब की भाषा प्राय: मध्यकालीन हिंदी (ब्रज) है, यद्यपि वह गुरुमुखी अक्षरों में लिखा गया हैं | पंजाबी भाषा में बोलियों का भेद अधिक हैं | इसमें उल्लेखनीय एक मात्र केवल बोली 'डोंग्री' हैं | यह जम्मू राज्य में बोली जाती है | 'तक्करी' या 'टाकरी' नाम की इस की लिपि भिन्न है |

२.२.४ गुजराती :

यह गुजरात प्रान्त की भाषा है। शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से गुजराती भाषा का विकास हुआ है। गुजराती भाषा गुजरात, बड़ोदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों में बोली जाती है। गुजराती में चोलियों का स्पष्ट भेद अधिक नहीं है। पारसियों द्वारा अपनाई जाने के कारण गुजराती पश्चिम भारत में व्यवसाय की भाषा हो गई है। भीली और खानदेशी बोलियों का गुजराती से बहुत संपर्क है। गुजराती का साहित्य बहुत विस्तीर्ण तो नहीं है, फिर भी उत्तम अवस्था में है। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता का (जन्म १४१३ ई.) गुजरात में अब

भी बहुत आदर है। प्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचंद्र भी गुजराती ही थे। यह १२ वीं शताब्दी ई. में हुए थे। इन्होंने अपने व्याकरण में गुजरात की नागर अपभ्रंश का वर्णन किया है। प्राचीन काल में अब तक की भाषा के क्रम-पूर्व उदाहरण केवल गुजरात में ही मिलते हैं। अन्य स्थानों की आर्यभाषात्रों में यह क्रम किसी न किसी काल में टूट गया है। गुजराती पहले देवनारी लिपि में लिखी जाती थी, किन्तु अब गुजरात में कैंथी से मिलते-जुलते देवनागरी के बिगड़े हुए रूप का प्रचार हो गया हैं जो गुजराती लिपि कहलाती हैं | गुजरात का प्राचीन नाम 'लाट' था। यहाँ की भाषा 'लाटी' थी। संस्कृत में 'लाटी' शैली प्रसिद्ध है। यहाँ अरब, पारसी, तुर्क आदि बड़ी संख्या में बाहर से आकर बसे हैं। अतः विदेशी तत्त्व भाषा में अधिक हैं। गुजराती की स्वतन्त्र लिपि है। यह देवनागरी से विकसित हुई है। इसमें उच्चकोटि का साहित्य मिलता है।

२.२.५ बांग्ला :

बंगाली (बांग्ला) यह बंगाल प्रान्त की भाषा है। मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से इसका विकास हुआ है। बंगाली भाषा गंगा के मुहाने अर्थात उसके उत्तर और पश्चिम के मैदानों में बोली जाती है। गाँव तथा नगर के बंगालियों की बोली में बहुत अंतर है। इसकी साहित्यिक भाषा को 'साधु भाषा' कहते हैं। इसमें संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है। बंगला भाषा की दो शाखाएँ है -

१. पूर्वी बंगला - जिसका क्षेत्र वर्तमान बंगलादेश है और जिसका केंद्र ढाका हैं |

२. पश्चिमी बंगला - जिसका क्षेत्र पश्चिमी बंगाल है तथा जिसका केंद्र कलकत्ता है |

कलकत्ता की ही भाषा टकसाली हैं| बंगला साहित्य बहुत प्राचीन नहीं हैं परंतु इस भाषा पर अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य का प्रभाव दिखाई देता है | हुगली के निकट बोली जानेवाली पश्चिमी बंगाली का ही एक रूप वर्तमान साहित्यिक भाषा हो गया है। बंगाली उच्चारण की विशेषता 'अ' का 'ओ' तथा 'स' का 'श' कर देना प्रसिद्ध ही है। इस भाषा का साहित्य उत्तम अवस्था में है। बंगला की लिपि अलग है। यह प्राचीन देवनागरी से विकसित है | यह साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। इसके प्रमुख साहित्यकार हैं - चंडीदास, कृत्तिवास (रामायण), विजयगुप्त (पद्मपुराण), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र आदि। बंगाली का प्रामाणिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'बंगाली का उद्भव और विकास' ग्रन्थ में किया है।

२.३ सारांश

सारांशतः प्रस्तुत इकाई में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का छात्रों ने अध्ययन किया हैं | आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश तथा तृतीय प्राकृत से हुआ हैं | इसे छात्रों ने जाना हैं और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय को देखा हैं | यहाँ पर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (१००० से अब तक) १००० ई. के आसपास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ, उसे देखा गया है | वस्तुतः कोई भी भाषा जन्म लेते ही साहित्य की भाषा नहीं बनती। पैदा होने के सौ-डेढ़

सौ वर्ष बाद स्वीकृति मिलने पर तथा उसका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य-रचना के लिए अपनाते हैं।

यहाँ सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दिया गया है।

२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. आधुनिक आर्य भाषाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए |

२. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कौन-कौन सी भाषा आती हैं, उसका विवेचन कीजिए |

२.५ टिप्पणियाँ

१. सिन्धी भाषा

२. मराठी भाषा

३. गुजराती भाषा

४. पंजाबी भाषा

५. बांगला भाषा

२.६ संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२. हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३. भाषा विज्ञान - डॉ. दानबहादुर पाठक 'वर', डॉ. मनहर गोपाल भार्गव

४. हिंदी भाषा का इतिहास - धीरेंद्र वर्मा

५. भाषा विज्ञान की भूमिका - आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

*****

३

हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास

इकाई की रुपरेखा

३.० इकाई का उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास

३.३ सारांश

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.५ टिप्पणियाँ

३.६ संदर्भ ग्रंथ

३.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का अध्ययन करेंगे -

- हिंदी भाषा की उत्पत्ति के बारे में जान सकेंगे |
- हिंदी भाषा का विकास किस तरह से हुआ उसे जानेंगे |

३.१ प्रस्तावना

सन १००० ई. तक हिंदी भाषा साहित्यिक रूप धारण कर चुकी थी | १००० ईसवी के बाद मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के अंतिम रूप अपभ्रंश भाषाओं ने धीरे-धीरे बदलकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का रूप ग्रहण का लिया था | हिंदी ने एकाएक साहित्यिक रूप धारण नहीं किया था | क्यौकि पहले वह साधारण बोल-चाल की भाषा रही होगी | बाद में फिर से धीरे-धीरे उसका साहित्य में प्रयोग हुआ होगा और तब कालांतर में यथासंभव वह साहित्य की भाषा बन गई होगी |

३.२ हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास

हिंदी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास के संदर्भ में सबसे पहले तीन मुख्यों कालों में विभाजित किया जाता हैं -

(क) प्राचीन काल

(ख) मध्यकाल

(ग) आधुनिक काल

इन तीनों कालों को क्रम से लेकर तत्कालीन परिस्थिति, भाषा-सामग्री तथा भाषा के रूप पर विस्तार से विचार किया गया हैं -

३.२.१ प्राचीन काल : (१५०० ई. तक)

१० वी शताब्दी से पूर्व में रचित ऐसे कई ग्रंथ है जिसका उल्लेख मिलता है परंतु उनके नमूने उपलब्ध नहीं हैं | हिंदी का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ चंद बरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' हैं | इस ग्रंथ में हिंदी भाषा का दर्शन हो जाता है | परंतु ग्रंथ की प्रमाणिकता को लेकर कई विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं | इस ग्रंथ का स्वरुप इतना मिश्रित तथा वैविध्यपूर्ण है की उसके मूल रूप का पत्ता लगाना बहुत ही मुश्किल तथा अत्यन्त कठिन हो रहा हैं |

हिंदी भाषा का इतिहास जिस समय प्रारंभ होता है, उस समय हिंदी प्रदेश तीन राज्यों में विभक्त था:

i. दिल्ली अजमेर का चौहान वंश |,

ii. कन्नौज का राठोर वंश |

iii. महोबा का परमार वंश |

ये तीन राज्य हिंदू राज्य थे | तीन केंद्रों से हमें हिंदी भाषा संबंधी सामग्री पाने की आशा हैं। पश्चिम में चौहान-वंश की राजधानी दिल्ली थी। पृथ्वीराज के समय में अजमेर का राज्य भी इसमें सम्मिलित हो गया था। दिल्ली राज्य की सीमाएं पश्चिम में पंजाब के मुसलमानी राज्य से मिली हुई थीं। दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान के राजपूत राज्यों से इस की घनिष्टता थी, किंतु पूरब की सीमा पर सदा घरेलू युद्ध होते रहते थे । नरपति नाल्ह तथा चंद कवि का संबंध क्रम से अजमेर और दिल्ली से था । चौहान राज्य के पूर्व में राठौर वंश की राजधानी कन्नौज थी और इस राज्य की सीमाएं अयोध्या तथा काशी तक चली गई थीं। कन्नौज के अंतिम सम्राट् जयचंद का दरबार साहित्य-चर्चा का मुख्य केंद्र था किंतु यहां 'भाषा' की अपेक्षा 'संस्कृत' तथा 'प्राकृत' का कदाचित् विशेष आदर था। संस्कृत के अंतिम महाकाव्य 'नैषधीय चरित' के लेखक श्रीहर्ष जयचंद के दरबार में ही राजकवि थे । कन्नौज के दरबार में भाषा-साहित्य को चर्चा भी रही होगी किंतु प्राचीन कन्नौज नगर के पूर्ण-रूप से नष्ट हो जाने के कारण इस केंद्र की सामग्री अब बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं है। इन दो राज्यों के दक्षिण में महोबा का प्रसिद्ध राज्य था । महोबा के राजकवि जगनायक या जगनिक का नाम तो आज तक प्रसिद्ध है, परंतु इसकी मूल कृति का पता अब तक नहीं चला । सन ११६१ ई. तक मध्यदेश के तीनों अंतिम हिंदू राज्य मौजूद थे और दस-बारह वर्ष के अंदर ही ये तीनों राज्य नष्ट हो गए। सन ११६१ में मुहम्मद गोरी ने पानीपत के निकट पृथ्वीराज को हरा कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया । अगले वर्षं इटावा के निकट जयचंद की हार हुई और कन्नौज से लेकर काशी तक का प्रदेश विदेशियों के हाथों में चला गया। शीघ्र ही महोबा पर भी मुसलमानों ने कब्ज़ा कर लिया । इस तरह समस्त हिंदी प्रदेश पर विदेशी शासकों का आधिपत्य हो गया । इन विदेशी शासको की रूचि हिंदी के प्रति बिलकुल नहीं थी | इसीलिए विकसित होती हुई नवीन भाषा के लिए यह बड़ा भारी धक्का था जिसके प्रभाव से हिंदी अब तक भी मुक्त नहीं हो सकी है।

हिंदी भाषा के इतिहास के संपूर्ण प्राचीन काल में मध्यदेश पर तथा उसके बाहर शेष उत्तर-भारत पर भी तुर्की मुसलमानों का साम्राज्य कायम रहा (१२०६-१५३६ ई.) इन सम्राटों की मातृभाषा तुर्की थी तथा दरबार की भाषा फ़ारसी थी। इन विदेशी शासकों की रुचि जनता की भाषा तथा संस्कृत के अध्ययन करने की ओर बिल्कुल भी न थी अतः तीन सौ वर्ष से अधिक इस साम्राज्य के क़ायम रहने पर भी दिल्ली के राजनीतिक केंद्र से हिंदी भाषा की उन्नति में बिल्कुल भी सहायता नहीं मिल सकी। इस काल में दिल्ली में केवल अमीर खुसरो ने मनोरंजन के लिए भाषा से कुछ प्रेम दिखलाया था। इस काल के अंतिम दिनों में पूर्वी हिंदुस्तान में धार्मिक आंदोलनों के कारण भाषा में कुछ काम हुआ, किंतु इसका संबंध तत्कालीन राज्य से बिल्कुल भी न था। राज्य की ओर से सहायता की अपेक्षा कदाचित् बाधा ही विशेष मिली। इस प्रकार के आंदोलन में गोरखनाथ, रामानंद तथा उनके प्रमुख शिष्य कबीर के संप्रदाय उल्लेखनीय हैं।

हिंदी भाषा के इस प्राचीन काल की सामग्री को चार भागों में विभक्त किया जा सकता हैं -

i. शिलालेख, ताम्रपत्र तथा प्राचीन पत्र आदि;

ii. अपभ्रंश काव्य;

iii. चारण-काव्य, जिनका आरंभ गंगा की घाटी में हुआ था और उसका विकास राजस्थान में हुआ था तथा धार्मिक ग्रंथ व अन्य काव्य-ग्रंथ |

iv. हिंदवी अथवा पुरानी खड़ीबोली में लिखा साहित्य |

विदेशी शासन होने के कारण इस काल में हिंदी भाषा में लिखे शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों आदि के अधिक संख्या में पाए जाने की संभावना बहुत कम है। इस संबंध में विशेष खोज भी नहीं की गई है, नहीं तो कुछ सामग्री अवश्य ही उपलब्ध होती। हिंदी के सत्र से प्राचीन नमूने पृथ्वीराज तथा समरसिंह के दरबारों से संबंध रखनेवाले पत्रों के रूप में समझे जाते थे, जिनको नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया था, किंतु ये प्रामाणिक सिद्ध हुए।

डा. पीताम्बरदत बर्थवाल और श्री राहुल सांकृत्यायन ने नाथपंथ तथा वज्रयानी सिद्ध साहित्य को ओर हिंदी पाठकों का ध्यान पहले-पहल आकर्षित किया तथा बहुत सी नवीन सामग्री भी ये विज्ञान प्रकाश में लाए। इस सामग्री की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की अभी पूर्ण परीक्षा नहीं हो पाई है। इन कवियों का समय ७०० ई. से १३०० ई. के बीच माना जाता है इनकी रचनाओं का वर्तमान रूप भी उसी समय का है। प्रारंभिक सिद्धों की कृतियों की भाषा स्पष्टतया अपभ्रंश (मागधी) है। इस साहित्यिक धारा का प्रथम परिचय विद्वानों को हरप्रसाद शास्त्री के "बौद्धगान ओ दोहा" के प्रकाशन के फलस्वरूप हुआ था।

पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग २, अंक ४ में 'पुरानी हिंदी' शीर्षक लेख में जो नमूने दिए हैं वे प्रायः गंगा की घाटी के बाहर के प्रदेशों में बने ग्रंथों के हैं, अतः इन में हिंदी के प्राचीन रूपों का कम पाया जाना स्वाभाविक है। अधिकांश उदाहरणों में प्राचीन राजस्थानी के नमूने मिलते हैं। इस के अतिरिक्त इन उदाहरणों की भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक है कि इन ग्रंथों को इस काल के अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत रखना अधिक उचित मालूम होता हैं। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में

ऐसा किया भी है। तो भी इन नमूनों से अपनी भाषा की पुरानी परिस्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

इस काल की भाषा के नमूनों का तीसरा समूह चारण, धार्मिक तथा लौकिक काव्य-ग्रंथों में मिलता है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से इन ग्रंथों की भाषा के नमूने अत्यंत संदिग्ध हैं। इन में से किसी भी ग्रंथ की इस काल की लिखी प्रामाणिक हस्त-लिखित प्रति उपलब्ध नहीं है। बहुत दिनों मौखिक रूप में रहने के बाद लिखे जाने पर भाषा में परिवर्तन का हो जाना स्वाभाविक है, अतः हिंदी भाषा के इतिहास की दृष्टि से इन ग्रंथों के नमूने बहुत मान्य नहीं हो सकते। इस काल की भाषा के अध्ययन के लिए या तो पुराने लेखों से सहायता लेना उपयुक्त होगा या ऐसी हस्तलिखित प्रतियों से जो १५०० ईसवी से पहले की लिखी हों।

दक्षिण भारत में विकसित हिंदवी अथवा दकिनी उर्दू साहित्य का प्रारंभ १३२६ ई. में मोहम्मद तुगलक के दक्षिण आक्रमण के बाद हुआ। हिंदवी के प्रारंभिक कवि मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीर थे जिन्हों ने अपने धार्मिक विचारों के प्रचार की दृष्टि से ये रचनाएं लिखी थीं। यह साहित्य देवनागरी लिपि में प्रकाशित नहीं हुआ है यद्यपि इसकी भाषा पुरानी खड़ी बोली है। इन लेखकों में सबसे प्रसिद्ध ख्वाजा बंदानिवाज (१३२१-१४५२ ई.) थे। हिंदवी में प्रारंभिक साहित्यिक रचनाएं बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासकों के द्वारा तथा उनकी संरिक्षता में १७वीं शताब्दी में लिखी गई। इस प्राचीन काल में हिंदी भाषा विभिन्न प्रभावों की शक्ति ग्रहण करके विकसित हो रही थी | और आदान-प्रदान के द्वारा वह निरंतर विकास को प्राप्त हो रही थी |

३.२.२ मध्यकाल : (१५००-१८०० ई.):

मध्यकाल तक आते - आते अर्थात १५०० ई. के बाद देश की परिस्थिति में एक बार फिर से परिवर्तन हुआ। तुर्की सम्राटों का महत्व कम होकर मुगल शासकों के हाथ में सत्ता चली गई। इस परिवर्तन काल में राजपूत राजाओं ने गंगा की घाटी पर अपना अधिकार जमाना चाहा, परंतु वे इसमें सफल नहीं हुए। मुगल तथा सूरवंश के सम्राटों की सहानुभूति जनता की सभ्यता को समझने की ओर तुर्कों की अपेक्षा कुछ अधिक थी। देश में शांति बनाए रहने तथा राज्य की ओर से कम उपेक्षा होने के कारण इस काल के साहित्य की चर्चा भी हुई। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने कहते है कि "वास्तव में यह काल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।"

ब्रजभाषा के साथ साथ अवधी का भी साहित्यिक विकास सोलहवीं सदी में ही प्रारंभ हुआ। ब्रजभाषा तो समस्त हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हो गई, और अवधी में लिखा गया ग्रंथ 'रामचरितमानस' का हिंदी जनता में सबसे अधिक प्रचार होने पर भी साहित्य के क्षेत्र में अवधी भाषा का ब्रजभाषा के जैसा प्रचार-प्रसार नहीं हो सका। मध्य-काल में अवधी में लिखे गए ग्रंथों में दो मुख्य हैं –

I. जायसी कृत 'पद्मावत' (१५४० ई.) ग्रंथ है जो शेरशाह सूर के शासन काल में लिखा गया था | और दूसरा

II. अकबर के शासनकाल काल में लिखा गया तुलसी कृत 'रामचरितमानस' (१५७५ ई.) ग्रंथ रहा है।

इन दोनों ग्रंथों की बहुत सी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं। और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण बहुत अंश में मान्य है। सोलहवीं सदी के बाद इसतरह का अवधी में कोई भी प्रसिद्ध ग्रंथ नहीं लिखा गया।

सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से ब्रजभाषा में साहित्य लिखने तथा रचना का प्रारंभ हुआ | हिंदी साहित्य की इस शाखा का केंद्र पश्चिम मध्यदेश में था अतः ब्रजभाषा साहित्य को धर्म के साथ-साथ विदेशी तथा देशी राज्यों का समर्थन भी मिल चुका था। उस समय सूरदास के ग्रंथ कदाचित् १५५० ई. तक रचे जा चुके थे। तुलसीदास ने भी 'विनयपत्रिका' तथा 'गीतावली' आदि कुछ काव्यों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। अष्टछाप - समुदाय के दूसरे महाकवि नंददास के ग्रंथ भी साहित्यिक ब्रजभाषा में उपलब्ध है। सत्रहवीं शताब्दी में प्रायः समस्त हिंदी साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया है। ब्रजभाषा का रूप दिन-ब-दिन साहित्यिक, परिष्कृत तथा संस्कृत होता चला गया है। बिहारी और सूरदास की ब्रजभाषा में बहुत-भेद है। बुंदेलखंड तथा राजस्थान के देशी राज्यों से संपर्क में आने के कारण इस काल के बहुत से कवियों की भाषा में जहां-तहां बुंदेली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है।

प्राचीनकाल तथा मध्यकाल के ग्रंथों में जहां-तहां खड़ीबोली के रूप भी बिखर पड़े हैं। रासो, कबीर, भूषण आदि में बराबर खड़ीबोली के प्रयोग वर्तमान है। इससे यह तो स्पष्ट है कि खड़ीबोली का अस्तित्व प्रारंभ ही से था, यद्यपि इस बोली का प्रयोग हिंदू कवि और लेखक साहित्य में विशेष नहीं करते थे। यह मुसलमानी बोली समझी जाती थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है दक्षिण में हिंदवी अथवा पुरानी खड़ीबोली का प्रयोग चौदहवीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया था। किंतु उत्तर-भारत में मुसलमान शासकों की संरक्षिता में इसका साहित्य में प्रयोग अठारहवीं सदी से विशेष हुआ। इससे पहले मुसलमान कवि भी यदि भाषा में कविता करते थे तो अवधी या ब्रज भाषा का व्यवहार करते थे। जायसी, रहीम आदि इसके स्पष्ट उदाहरण है। खड़ीबोली उर्दू के प्रथम प्रसिद्ध कवि हैदराबाद (दक्खिन) के वली माने जाते हैं। इनका कविताकाल अठारहवीं सदी के प्रारंभ में पढ़ता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में बहुत से मुसलमान कवियों ने काव्य-रचना करके खड़ीबोली उर्दू को परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। इन कवियों में मौर, सौदा, इंशा, गालिब, जौक और दाग उल्लेखनीय है। सारांशतः मध्यकाल के प्रथम भाग में हिंदी की पुरानी बोलियों ने विकसित होकर ब्रज, अवधी और खड़ीबोली का रूप धारण कर चुकी थी | इस काल में मुसलमान तथा हिंदू के अनेक कवि हुए | यह ब्रज, अवधी और खड़ीबोली में ही इसका विकास होता गया |

३.२.३ आधुनिक काल : (१८०० ई. से अब तक)

आधुनिक काल में अर्थात अठारहवीं सदी के अंत से ही देश में काफी परिवर्तन हुआ | मुगल साम्राज्य निर्बल होने से अठारह सदी के उत्तरार्द्ध में मराठा, अफगान और अंग्रेज आदि तीन बाहर की शक्तियों द्वारा हिंदी प्रदेश पर अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया गया | १७६१ में मध्यदेश की पश्चिमी सरहद पर पानीपत के तीसरे युद्ध में अफगानों के हाथ से

मराठों को ऐसा भारी धक्का पहुंचा कि वे फिर से अपनी शक्ति को दिखा नहीं सके | परंतु अफगान इस विजय का लाभ नहीं उठा पाए | तीन वर्ष बाद १७६४ ई. में हिंदी प्रदेश की पूर्वी सीमा पर बक्सर के निकट अंग्रेजों तथा अवध और दिल्ली के मुसलमान शासकों के बीच युद्ध हुआ जिसके फल-स्वरूप अंग्रेजों के लिए गंगा की घाटी का पश्चिमी भाग खुल गया। १८०२ ई. के लगभग आगरा उपप्रांत अंग्रेजों के हाथ में चला गया तथा १८५६ ई. में अवध पर भी अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया।

इस तरह की राजनीतिक परिवर्तनों के कारण १६वीं सदी के आरंभ से ही मध्यदेश की भाषा हिंदी पर भारी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अठारहवीं सदी में ब्रजभाषा की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, साथ ही मुसलमानों के बीच खड़ीबोली उर्दू ज़ोर पकड़ चुकी थी। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में अंग्रेजों ने हिंदुओं के लिए खड़ीबोली गद्य के संबंध में कुछ प्रयोग किए हैं जिनके फलस्वरूप फोर्ट विलियम कालेज में लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना में। प्रारंभ के इन खड़ीबोली के ग्रंथों पर ब्रजभाषा का प्रभाव रहना स्वाभाविक है। 'प्रेमसागर' में तो ब्रजभाषा के प्रयोग बहुत अधिक पाए जाते है।

खड़ीबोली हिंदी का गद्य साहित्य में प्रचार उन्नीसव सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ, और इसका श्रेय साहित्य के क्षेत्र में भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा धर्म के क्षेत्र में स्वामी दयानंद सरस्वती को है। मुद्रण कला के साथ-साथ खड़ीबोली हिंदी का प्रचार बहुत तेज़ी से बढ़ा | उन्नीसवीं सदी तक ब्रजभाषा का प्रयोग होता रहा, किंतु बीसवीं सदी में आते-आते खड़ीबोली हिंदी संपूर्ण मध्यदेश की, गद्य और पद्य दोनों की एकमात्र साहित्यिक भाषा बन गई। ब्रजभाषा में कविता करने की शैली अभी तक पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुई है, किंतु इसके दिन इने-गिने हैं।

खड़ीबोली - पद्य के प्रारंभ के कवियों की भाषा में भी लल्लूलाल आदि प्रथम गद्य - लेखकों के समान ब्रजभाषा की झलक पर्याप्त है। श्रीधर पाठक की खड़ीबोली कविता की मिठास का कारण बहुत कुछ ब्रजभाषा के रूपों का व्यवहार है, यह परिवर्तन काल शीघ्र ही दूर हो गया और अब तो खांचोली कविता की भाषा से भी ब्रजभाषा की छाप बिल्कुल हट गई है। गत डेढ़-दो सौ वर्षों से साहित्यिक खडी-बोली, आधुनिक हिंदी और उर्दू मेरठ-बिजनौर की जनता की खड़ीबोली से स्वतंत्र होकर अपने-अपने ढंग से विकास को प्राप्त कर रही है। स्वाभाविक बोली के प्रभाव से पृथक हो जाने के कारण इस के व्याकरण का ढाँचा तथा शब्दसमूह निराला होता जाता है। तो भी अभी तक आधुनिक हिंदी-उर्दू के व्याकरण का स्वरूप मेरठ-बिजनौर की खड़ीबोली से बहुत अधिक भिन्न नहीं हो पाया है | भेद की अपेक्षा साम्य की मात्रा विशेष है।

साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली हिंदी के व्यापक प्रभाव के रहते हुए भी हिंदी की अन्य प्रादेशिक बोलियां अपने-अपने प्रदेशों में आज भी पूर्ण रूप से जीवितावस्था में हैं। मध्यदेश के गाँवों की समस्त जनता अब भी खड़ीबोली के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों के आधुनिक रूपों का व्यवहार कर रही है। गाँव के अनपढ़ लोग बोलचाल की आधुनिक साहित्यिक हिंदी को समझ बराबर लेते हैं, किंतु ठीक-ठीक बोल नहीं पाते। गाँव की बोलियों में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा हैं | जायसी की अवधी तथा आजकल की अवधी में पर्याप्त भेद हो गया है। इसी तरह सूरदास की ब्रजभाषा से आजकल की ब्रज की बोली कुछ भिन्न हो गई है। इन परिवर्तनों को प्रारंभ हुए सौ- सवा सौ वर्ष अवश्य

बीत चुके हैं, इसी लिए लगभग १८०० ई० से हिंदी भाषा के इतिहास के तीसरे काल का प्रारंभ माना जा सकता है। यद्यपि अभी भेदों की मात्रा अधिक नहीं हो पाई है, किंतु संभावना यही है कि ये भेद बढ़ते ही जावेंगे, और सौ दो सौ वर्ष के अंदर ही ऐसी परिस्थिति आ सकती है जब तुलसी सूर आदि की भाषा को स्वाभाविक ढंग से समझ लेना अवध और ब्रज के लोगों के लिए कठिन हो जावेगा। इस प्रगति का प्रारंभ हो गया है।

३.३ सारांश

प्रस्तुत इकाई में छात्रों ने हिंदी भाषा की उत्पत्ति और उसका विकास किस तरह से हुआ है उसका विस्तार से अध्ययन किया है | हिंदी भाषा एक प्रवाहमान रही हैं | वह अपने आतंरिक शक्ति को विकसित करेने के लिए बाह्य प्रभावों एवं परिस्थितियों से शक्ति-संचय करती हुई निरंतर विकासशील रही हैं |

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. हिंदी भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास को स्पष्ट कीजिए |

२. हिंदी भाषा की उत्पत्ति के लिए प्राचीन, मध्यकाल और आधुनिक काल क्या महत्व हैं, उसे विस्तार से स्पष्ट कीजिए |

२. हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास को रेखांकित कीजिए |

३.५ टिप्पणियाँ

१. प्राचीन काल, २. मध्यकाल, ३. आधुनिक काल

३.६ संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२. हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३. भाषा विज्ञान - डॉ. दानबहादुर पाठक 'वर', डॉ. मनहर गोपाल भार्गव

४. हिंदी भाषा का इतिहास - धीरेंद्र वर्मा

५. भाषा विज्ञान की भूमिका - आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

*****

४

हिंदी की प्रमुख बोलियाँ

इकाई की रुपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य
४.१ प्रस्तावना
४.२ हिंदी की प्रमुख बोलियाँ
४.२.१ ब्रजभाषा
४.२.२ अवधी
४.२.३ भोजपुरी
४.२.४ खड़ीबोली
४.४ सारांश
४.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
४.६ टिप्पणियाँ
४.७ संदर्भ ग्रंथ

४.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे |

- हिंदी की प्रमुख बोलियों को जान सकेंगे |
- ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, खड़ीबोली आदि का विस्तार से अध्ययन करेंगे|

४.१ प्रस्तावना

हिंदी की चार मुख्य बोलियों में से ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी और खड़ीबोली आदि बोली हैं| अर्थात् मेरठ-बिजनौर की खड़ीबोली, मथुरा आगरा की ब्रजभाषा, लखनऊ - फ़ैज़ाबाद की अवधी तथा बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी । इन भाषाओं की बोलियों को भी एक प्रकार से हिंदी के अंतर्गत ही माना जा सकता है।

४.२ हिंदी की प्रमुख बोलियाँ

हिंदी की प्रमुख बोलियों का सामान्य परिचय निम्नलिखित है -

४.२.१ ब्रजभाषा:

'ब्रजभाषा' का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप में हुआ हैं | इसका जन्म १००० ई. के आस-पास माना जा सकता हैं | ब्रजभाषा के इतिहास को तीन कालो में विभाजित

किया जा सकता हैं - आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल | 'ब्रज' का पुराना अर्थ है 'पशुओं' या 'गौओं का समूह' या 'चारागाह' आदि हैं | पशुपालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्र ब्रज कहलाया हैं | और इसी आधार पर इसे ब्रज या ब्रजभाषा कहा जाता हैं | प्राचीन हिंदी साहित्य की दृष्टि से ब्रज की बोली की गिनती साहित्यिक भाषाओं में होने से उसे ब्रजभाषा के रूप पहचान प्राप्त हुई। विशुद्ध रूप में यह बोली अब भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोली जाती है। गुड़गाँव, भरतपुर, करौली तथा ग्वालियर के पश्चिमोत्तर भाग में इसमें राजस्थानी और बुंदेली की कुछ-कुछ झलक दिखने को मिलती है। बुलंदशहर, बदायूं और नैनीताल की तराई में खड़ीबोली का प्रभाव शुरू हो जाता है तथा एटा, मैनपुरी और बरेली जिलों में कुछ कनौजीपन आने लगता है। वास्तव में पीलीभीत तथा इटावा की बोली भी कनौजी की अपेक्षा ब्रजभाषा के अधिक निकट है। हेमचन्द्र के व्याकरण में जो उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया हैं वहा पर ब्रजभाषा का पूर्वरूप सुरक्षित हैं | संदेशरासक, प्राकृतपैंगलम आदि रचनाओं में ब्रज के रूप देखने को मिलते हैं | जब से गोकुल बल्लभ संप्रदाय का केंद्र हुआ तब से ब्रजभाषा में कृष्ण-साहित्य लिखा जाने लगा। धीरे-धीरे यह बोली समस्त हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई। १६वीं शताब्दी में साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली ब्रजभाषा की स्थानापन्न हुई।

४.२.२ अवधी:

'अवध' शब्द का संबंध 'अयोध्या' से हैं | अवधी भाषी प्रदेश का नाम 'अवध' हैं, इसी के आधार पर इस भाषा को 'अवधी' नाम दे दिया गया हैं | अवधी नाम का भाषा के अर्थ में प्राचीनतम प्रयोग अमीर खुसरों ने अपने 'नुहसिपुर' में किया | इसी के साथ 'आईने अकबरी' में भी यह शब्द मिलता हैं | 'अवधी' एक महत्वपूर्ण बोली है जिसका विकास पश्चिम में स्थित कनौजी, ब्रज आदि बोलियों के शौरसेनी से उद्भूत हैं तथा पूर्व की भोजपुरी मागधी से | इसी के आधार पर ग्रियर्सन ने अवधी या पूर्वी हिंदी को शौरसेनी एवं मागधी के बीच की अर्धमागधी से उत्पन्न हुई है ऐसा माना हैं | बाबुराव सक्सेना कहते है कि "अर्धमागधी का जो रूप जैन ग्रंथों में उपलब्ध है, उसकी तुलना में अवधी पालि से अधिक समानताए रखता है |" अवधी की उत्पति अन्य भारतीय भाषाओं की तरह १००० या ११०० ई. के आस-पास हुई हैं | इसके विकास क्रम को निम्लिखित कालों में बांटा जा सकता है -

१. प्रारंभ से १४०० तक |

२. १४०० से १७०० तक |

३. १७०० से अब तक |

यह अवधी बोली लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फ़ैज़ाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी में तो बोली ही जाती है, किंतु इन जिलों के अतिरिक्त दक्षिण में गंगापार, इलाहाबाद, फ़तेहपुर, कानपुर और मिर्ज़ापुर में तथा जौनपुर के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है। बिहार के मुसलमान भी अवधी बोलते हैं। इस मिश्रित अवधी का विस्तार मुज़फ्फ़रपुर तक है। ब्रजभाषा के साथ अवधी में भी साहित्य लिखा गया था | उसमें से 'पद्मावत', 'रामचरितमानस' तथा 'कृष्णायन' अवधी के सुप्रसिद्ध ग्रंथरत्न हैं।

४.२.३ भोजपुरी:

भोजपुरी की उत्पत्ति पश्चिमी मागधी या मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से मानी जाती हैं | 'भोजपुरी' यह प्राचीन काशी जनपद की बोली है। बिहार के शाहाबाद जिले में भोजपुर एक छोटा-सा क़स्बा है। इस बोली का नाम इसी स्थान से पड़ा है, यद्यपि यह दूर-दूर तक बोली जाती है। प्राचीन काल में भोजपुर इसी नाम के राज्य की राजधानी होने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध रहा था | भाषा के अर्थ में 'भोजपुरी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग १७८९ में मिलता हैं | यह प्रयोग रेमंड के 'शेर मुताखरीन' के अनुवाद की भूमिका में हैं | भोजपुरी को 'पूरबी' भी कहा जाता हैं | और इसी के साथ 'भोजपुरिया' भी कहा जाता हैं | ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली क्षेत्र के लोग 'अवधी' का भी प्रयोग 'भोजपुरी' के लिए किया करते थे | ग्रिर्यसन ने मगही और मैथिलि के साथ भोजपुरी को बिहारी के पक्ष में रखा था | परंतु डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसका विरोध किया और भोजपुरी को मगही, मैथिलि से इतना भिन्न मानते है की इन तीनों को एक वर्ग में रखना ठीक नहीं मानते | इसकी प्रधान चार बोलियाँ है उत्तरी भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी, दक्षिणी भोजपुरी और नागपुरिया |

यह भोजपुरी बोली बनारस, मिर्ज़ापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, आज़मगढ़, शाहाबाद, चंपारन, सारन तथा छोटा नागपुर तक फैली पड़ी है। भोजपुरी में साहित्य कुछ भी नहीं है। संस्कृत का केंद्र होने के अतिरिक्त काशी हिंदी साहित्य का भी प्राचीन केंद्र रहा है, किंतु भोजपुरी बोली से घिरे रहने पर भी इस बोली का प्रयोग साहित्य में कभी नहीं किया गया। काशी में रहते हुए भी कविगण प्राचीन काल में ब्रज तथा अवधी में और आधुनिक काल में साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी में लिखते रहे हैं। भाषा संबंधी कुछ साम्यों को छोड़कर भोजपुरी प्रदेश बिहार की अपेक्षा हिंदी प्रदेश के अधिक निकट रहा है।

४.२.४ खड़ीबोली:

'खड़ीबोली' का अर्थ हैं 'खड़ी' मूलतः 'खरी' हैं और इसका अर्थ है 'शुद्ध' | इसका साहित्य में प्रयोग करते समय जब अरबी-फ़ारसी शब्दों को निकाल कर इसे शुद्ध रूप में प्रयुक्त करने का यत्न किया जाए तो इसे 'खरी बोली' कहा गया हैं | जो बाद में 'खड़ीबोली' हो गया | 'खड़ीबोली' शब्द का प्रयोग दो अर्थो में होता है - एक तो 'मानक हिंदी' और जिसकी तीन शैलियाँ हैं वे 'हिन्दी', 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' आदि | और दूसरे में यह कह सकते है कि उस लोकबोली के लिए जो दिल्ली-मेरठ तथा आस-पास बोली में जाती हैं | यहाँ पर खड़ीबोली नाम का प्रयोग दूसरे अर्थ में किया जाता हैं | इसी अर्थ में 'कौरवी' नाम भी प्रयोग होता हैं | यह क्षेत्र पुराना 'कुरु' जनपद हैं | इसी के आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने इस बोली को नाम 'कौरवी' दिया था | खड़ीबोली के संदर्भ विद्वान कहते हैं -

१. कामताप्रसाद गुरु के अनुसार 'खड़ी' का अर्थ है 'कर्कश' | यह बोली ब्रज की तुलना में कर्कश है | इसलिए इसका यह नाम पड़ा |

२. किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार 'आकारांतता' की 'खड़ी' पाई ने ही इसे यह नाम दिया हैं |

३. गिल क्राइस्ट ने 'खड़ी' का अर्थ 'मानक' या 'परिनिष्ठित' किया हैं |

खड़ीबोली जनसाधारण की बोलचाल की भाषा रही हैं | इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से मान सकते हैं | और खड़ीबोली में प्रयुक्त रूपों के बीज हमें प्राकृत काल में ही मिलने लगते हैं | आधुनिक युग में जिसे हिंदी कहा जाता है वही खड़ीबोली का विकसित रूप हैं | इसका दर्शन १२ वीं शताब्दी में ही होता हैं | उद्योतन सुरि का ग्रंथ 'कुवलयमाला' में इसकी प्रथम झाकी मिलती हैं | आधुनिक काल में खड़ीबोली की विशेष उन्नति हुई हैं | आधुनिक काल के खड़ीबोली के लेखक है लल्लू लाल, इंशाअल्ला खाँ, सदल मिश्र, सदासुखलाल, राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द'| खड़ीबोली निम्नलिखित स्थानों में बोली जाती है रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ्फ़रनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अंबाला तथा कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भाग |

४.३ सारांश

सारांशतः यह कह सकते हैं कि इस इकाई में ब्रज भाषा, अवधी, भोजपुरी और खड़ीबोली यह हिंदी की चार मुख्य बोलियां मानी जाती हैं | भाषाओं की बोलियों को भी एक प्रकार से हिंदी के अंतर्गत ही माना जा सकता है। इसका छात्रों ने इसका अध्ययन किया हैं |

४.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. हिंदी की प्रमुख बोली कौन-कौन सी है उसे विस्तार से रेखांकित कीजिए |

२. हिंदी की प्रमुख बोलियों में से खड़ीबोली और भोजपुरी की विस्तार से चर्चा कीजिए |

४.५ टिप्पणियाँ

१. अवधी २. भोजपुरी ३. ब्रजभाषा ४. खड़ीबोली

४.६ संदर्भ ग्रंथ

- भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
- हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी
- भाषा विज्ञान - डॉ. दानबहादुर पाठक 'वर', डॉ. मनहर गोपाल भार्गव
- हिंदी भाषा का इतिहास - धीरेंद्र वर्मा
- भाषा विज्ञान की भूमिका - आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

*****

५

खड़ीबोली हिन्दी के विविध रूप

इकाई की रुपरेखा

५.० इकाई का उद्देश्य
५.१ प्रस्तावना
५.२ खड़ीबोली हिन्दी के विविध रूप
५.२.१ हिंदी
५.२.२ हिंदुस्तानी
५.२.३ उर्दू
५.२.४ दक्खिनी
५.३ सारांश
५.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न
५.५ टिप्पणियाँ
५.६ संदर्भ ग्रंथ

५.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगें -

- खड़ीबोली हिंदी का विस्तार से अध्ययन करेंगे |
- खड़ीबोली के विविध रूप कौन-कौनसे है उसे देखेंगे |

५.१. प्रस्तावना

खड़ीबोली का अर्थ उस बोली से लिया जाता है की जो मेरठ, मुरादाबाद, ब्रिजनौर, देहरादून, अम्बला, सहारनपुर, पटियाला के पूर्वी भागों में या आस-पास बोली जाती हो | और दूसरे अर्थ में इसे यह कहा जा सकता है कि वह भाषा जिस पर आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी, उर्दू आदि पर आधारित हैं | यहाँ पर इसी अर्थ में खड़ीबोली नाम का प्रयोग किया गया हैं | साहित्यिक दृष्टि से हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी आदि इसके विभिन्न रूप रहे हैं |

५.२ खड़ीबोली हिन्दी के विविध रूप

खड़ीबोली के साहित्यिक रूप का विकास आधुनिक काल में हुआ हैं | परन्तु उसके दर्शन करीबन १२ वीं शताब्दी में ही हो जाते हैं | और खड़ीबोली जनसाधारण की बोलचाल की भाषा बहुत दिनों से रही हैं | इसीलिए खड़ी बोली हिंदी के विविध रूप कौन-कौनसे हैं उसे जानना महत्वपूर्ण है -

५.२.१ हिंदी :

भाषाशास्त्रियों के अनुसार ‘हिंदी’ का सम्बन्ध मूलतः सं. शब्द ‘सिंधु’ से माना है | यह शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है, बल्कि आर्यों के आने के पूर्व से यह शब्द प्रचलित रहा है, और उसका मूल द्रविड़ शब्द 'सिद्' या 'सित्' जो उस नदी तथा उसके आसपास के प्रदेश का आर्यपूर्व नाम था। 'सिन्धु' नाम उसी का संस्कृत बनाया हुआ रूप है। ईरान में जाकर यह 'सिंधु' शब्द ध्वनि-परिवर्तन से 'हिंदु' (स > ह, ध > द) हो गया और पहले तो यह सिंध प्रदेश का नाम था, फिर ईरानी भारत के जितने भी भाग से परिचित होते गए, उसे इसी नाम से अभिहित करते गए, तथा धीरे-धीरे यह पूरे भारत का वाचक हो गया।

'हिंदु' शब्द आगे चलकर पुरानी फ़ारसी आदि में 'हिंद' बना और उसका भी अर्थ ‘भारत था।’ इसी में 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिंदीक' बना जो ग्रीक में जाकर 'इंदीक', 'इंदिका' तथा अंग्रेजी में 'इंडिया' बन गया | 'हिंदीक' में ही 'क' के लोप से 'हिंदी' शब्द बना जिसका मूल अर्थ है 'भारत का'। इसी आधार पर 'जबान-ए-हिन्दी' का अर्थ हुआ ‘भारत की भाषा' और इसका प्रयोग समय-समय पर संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं के लिए हुआ। धीरे-धीरे 'जबान ए' लुप्त हो गया और केवल 'हिंदी' बचा तथा यह शब्द भारत की केन्द्रीय भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। इस अर्थ में 'हिंदी' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी के 'जफ़रनामा' (१४२४ ई.) में मिलता है। १९वीं सदी के प्रारंभ तक 'हिंदी' नाम 'उर्दू' के लिए भी आता था। हातिम, नासिख, सौदा, मीर तथा ग़ालिब आदि ने अपनी भाषा के लिए इस नाम का भी प्रयोग किया है। १८०० ई. में कलकत्ते में फोर्ट विलियम कोलेज की स्थापना होने के बाद अँग्रेजों ने हिंदू-मुसलमान में फूट डालने की नीति को अपनाया था | उन्होंने मूल भाषा के संस्कृतनिष्ठ रूप के लिए 'हिंदी' तथा अरबी-फ़ारसी-निष्ठ रूप के लिए 'उर्दू' को रूढ़ कर दिया और इस बात की कोशिश भी की गई कि 'हिंदुओं' के साथ 'हिंदी' और 'मुसलमानों' के साथ 'उर्दू' का संबद्ध हो जाए | इसमें अंग्रेज एक सीमा तक सफल भी हो जाते हैं।

वस्तुतः शब्दों में अरबी-फ़ारसी तथा संस्कृत के आधिक्य की बात छोड़ देते है तो हिन्दी और उर्दू में कोई खास अंतर नहीं है दिखाई देता हैं। इसीलिए यहाँ पर यह कह सकते है कि प्रारम्भ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए होता था। तज्रकिरा मखजन-उल-गरायब में आता है 'दर जबाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त।’ इस उदाहरण से हिन्दी उर्दू का समानार्थी है तो दूसरी तरफ़ हिन्दी सूफ़ी कवि नूर मुहम्मद ने कहा है -

> हिन्दू मग पर पाँव न राख्यौ।
>
> का बहुतै जो हिन्दी भाख्यौं ||

यहाँ इस शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिए है। वस्तुतः यदि अंग्रेज बीच में न पड़े होते तो आज ये दोनों एक भाषाएँ होती| आज भी भाषा विज्ञान के विद्वान इन दोनों को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते हैं।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग आज मुख्य रूप से तीन अर्थों में हो रहा है -

(क) 'हिन्दी' शब्द अपने विस्तृततम अर्थ में हिन्दी - प्रदेश में बोली जाने बाली १७ बोलियों का द्योतक है। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है, जहाँ ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, खड़ीबोली आदि प्रायः सभी में लिखित साहित्य का विवेचन हिन्दी के अंतर्गत किया जाता है।

(ख) 'पश्चिमी हिंदी' और 'पूर्वी हिन्दी' को हिन्दी ही माना जाता हैं। ग्रियर्सन ने इसी को आधार मानकर हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं को राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी कहा था, जिनमें 'हिंदी' शब्द का प्रयोग नहीं है, किन्तु अन्य दो को हिन्दी मानने के कारण 'पश्चिमी हिन्दी' तथा 'पूर्वी हिन्दी' नाम दिया था। इस प्रकार से इस अर्थ में 'हिन्दी' की आठ बोलियाँ रही है - ब्रज, खड़ीबोली, बुन्देली, हरियाणी, कनौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि का सामूहिक नाम है।

(ग) 'हिन्दी' शब्द का अर्थ है 'खड़ीबोली हिन्दी |' जो आज हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है, पूरे भारत की राजभाषा है, समाचार-पत्रों, फ़िल्मों में जिसका प्रयोग होता है तथा जो हिन्दी प्रदेश के शिक्षा का माध्यम है और जिसे 'परिनिष्ठित हिन्दी' या 'मानक हिन्दी' आदि नामों से भी पुकारते हैं। उर्दू भी इसी का एक शैलीय रूपांतर है।

५.२.२ हिन्दुस्तानी :

हिन्दुस्तानी यह शब्द मूलतः विशेषण (हिन्दुस्तान + ई) है, और इसका अर्थ है 'हिन्दुस्तान का' या 'भारतीय'। भाषा के अर्थ में 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग हिन्दी के एक रूप के लिए होता है। ग्रियर्सन, धीरेन्द्र वर्मा आदि विद्वानों ने यह नाम यूरोपियों की देन है ऐसा माना हैं, परंतु यह नाम कहीं अधिक पुराना रहा है। 'तुजुके बाबरी' में आता है "मैंने उसे (दौलत खाँ लोदी को) अपने सामने बिठलाकर एक व्यक्ति द्वारा जो हिन्दुस्तानी भाषा भली-भाँति जानता था, अपनी हर बात उसे समझाने का आदेश दिया।" इस प्रकार कम-से-कम बाबर के समय से तो यह प्रयोग में है ही। यह शब्द भाषा के अर्थ में बाबर से भी पहले कदाचित् १५ वीं सदी का है। आगे यह बाबर (१६ वीं सदी), फ़रिश्ता (१७ वीं सदी), टेरी (१६१६), अमादुज्जी (१७०४), केटलियर (१७१५), लेबिदोफ़ (१७९५) तथा वजही (१९३५) आदि में 'हिन्दुस्तानी' एवं 'इन्दोस्तान' आदि रूपों में मिलता है।

भाषा के अर्थ में यह शब्द 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' का पर्याय था, किन्तु बाद में १८वीं सदी में इसका प्रयोग मुसलमानों की भाषा के लिए होने लगा। इस रूप में यह शब्द 'उर्दू' का पर्याय हो गया। १९वीं सदी में यह बात स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। गार्सा-द-तासी के इतिहास के नाम 'इस्त्वार द ला लित्रेतुर ऐदुई ए ऐंदुस्तानी' से भी इस बात का संकेत मिलता है। इसमें 'ऐंदुई' तो 'हिंदुवी' है और ऐंदुस्तानी' अर्थात् 'हिन्दुस्तानी', 'उर्दू' | हेनरी यूल तथा बर्नेल ने अपने प्रसिद्ध कोश 'होब्सन - जॉब्सन' (१८८६) में स्पष्टतः इसे उर्दू कहा है तथा यह भी बतलाया है कि उसे पुराने ऐंग्लो-इंडियन 'मूर्स' कहा करते थे।

सन १९०० के आसपास 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग कभी तो उर्दू के लिए और कभी-कभी हिन्दी-उर्दू के बीच की भाषा, अर्थात् 'सरल हिन्दी' या 'सरल उर्दू' के लिए मिलता है। इसी आधार पर ग्रिर्यसन ने 'कौरवी' को 'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी' कहा है। अंग्रेजों ने राष्ट्रीयता के

जागरण को दबाने के लिए हिन्दू-मुसलमानों में विरोध उत्पन्न करने की नीति १९वीं सदी में ही अपना ली थी, और 'हिन्दुस्तानी' नाम की आड़ में वे अल्पसंख्यकों की भाषा उर्दू को प्रोत्साहित कर रहे थे। अन्य कारणों के अतिरिक्त इसका सामना करने के लिए भी, १८९३ ई. में 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' की, तथा १९१० में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की स्थापना हुई। दिनोंदिन हिन्दी-उर्दू में विरोध बढ़ने लगा जो राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए घातक सिद्ध होने लगा। कांग्रेस के नेताओं ने इसका अनुभव किया, अतः १९२६ के कांग्रेस अधिवेशन (कानपुर) में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने यह प्रस्ताव रखा कि आगे से कांग्रेस की कार्यवाही 'हिन्दुस्तानी' में हो। हिन्दुस्तानी से उनका अर्थ हिन्दी-उर्दू के बीच की सरल भाषा था। हिन्दी-उर्दू के झगड़े को दूर करने के लिए, दोनों को छोड़ इस नाम का प्रयोग किया गया था। यह सब गांधीजी की प्रेरणा से हुआ था। इस प्रकार इस सदी के दूसरे चरण के आरम्भ में गांधीजी ने 'हिन्दुस्तानी' शब्द में यह अर्थ सदा-सर्वदा के लिए निश्चित कर दिया। आज भी 'हिन्दुस्तानी' नाम प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। यों बीच-बीच में अब्दुल हक़, सैयद सुलेमान नदवी, डॉ. ताराचन्द, पं. सुन्दरलाल तथा कुछ अन्य लोगों ने 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग 'उर्दू की ओर झुकी हुई भाषा' के लिए भी किया, परंतु जनता उसे स्वीकार नहीं करती हैं|

५.२.३ उर्दू :

भाषा शास्त्रियों ने 'उर्दू' शब्द को मूलतः तुर्की भाषा का माना है और इसका मूल अर्थ 'शाही शिबिर' या 'खेमा' आदि है। यह शब्द मूलतः चीनी भाषा का भी हो सकता है। चीन से चलकर मंगोलिया और तुर्की होते तुर्कों के साथ भारत में आया। हॉब्सन-जॉब्सन के अनुसार यह शब्द बाबर के समय में भारत में आया, परंतु बाबर से पूर्व ही तुर्कों के साथ यह शब्द भारत में आ चुका था। उस समय इसके अर्थ 'खेमा', 'तम्बू', 'फ़ौजी पढ़ाव' आदि थे तथा उसका रूप 'ओर्दू' से 'उर्दू' हो चुका था। 'ऊ' पर अतिरिक्त बलाघात के कारण 'ओ' कोमल होकर 'उ' हो गया। यहाँ इसका अर्थ 'छावनी या लश्कर का बाजार' या 'वह बाजार जहाँ सब तरह की चीजें मिलती हों' आदि भी हो गया। आक्रमणकारी मुसलमान फ़ौजी पढ़ावों में रहते थे तथा वहाँ उनका जरूरी चीजों के लिए बाजार भी होता था। 'सेना के बाजार' अर्थ में ही भारत के दिल्ली, गोरखपुर, गाजीपुर आदि कई नगरों में 'उर्दू बाजार' नाम मिलता है।

मुगल बादशाहों के 'फ़ौजी पड़ावों' के लिए भी 'उर्दू' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इन बादशाहों के सिक्के कभी-कभी पड़ावों में ही डालने पड़ते थे, इसीलिए सिक्कों पर टकसाल का नाम प्रायः 'उर्दू' में लिखा मिलता है। बाबर के कुछ सिक्कों पर 'उर्दू' लिखा है। इसी प्रकार अकबर के भी कुछ सिक्कों पर 'उर्दू-ए-जफ़र करीन' या 'उर्दू' लिखा है। जहाँगीर ने कभी दक्षिण जाते समय रास्ते में अपने शाही पड़ाव में सिक्के डलवाये थे। उसका एक सिक्का ऐसा मिला है, जिस पर टकसाल का नाम 'उर्दू-दर-राहे-दक्कन' (अर्थात् दक्षिण के राह में का पड़ाव) लिखा है | शाहजहाँ ने कदाचित अकबर के अनुकरण पर अपने टकसाल का नाम ही 'उर्दू'-ए-ज़फ़र करीन' रख लिया था। इस तरह बाबर से लेकर शाहजहाँ तक 'उर्दू' शब्द 'शाही पड़ाव' या 'शाही फ़ौजी पड़ाव' आदि के अर्थों में प्रयुक्त होता रहा। इन पढ़ावी सैनिकों ने, बाबर के काल में, दिल्ली के आसपास प्रचलित कौरवी-बांगरू-पूर्वी पंजाबी-ब्रज मिश्रित लोकभाषा को अपनाया। बाद में जब राजधानी आगरे से चली गई तो शाही फौजी पड़ाव वहाँ गया और इन फौजियों की भाषा पर ब्रजभाषा का अतिरिक्त रंग चढ़ गया। इस

प्रकार मुगल बादशाहों के साथ रहने वालों की भाषा वह थी, जिसके शब्द समूह में अरबी-फारसी-तुर्की शब्द काफ़ी थे, किन्तु जिसका व्याकरण मूलतः कौरवी का था, किन्तु साथ ही पंजाबी, बांगरू, ब्रज आदि के तत्त्व भी उसमें थे।

शाहजहाँ ने अपनी राजधानी फिर आगरा से दिल्ली बदल ली और अपने नाम पर 'शाहजहानाबाद' आबाद किया। यहां उसने लाल क़िला बनवाया। यह भी उसका एक प्रकार से शाही फ़ौजी पड़ाव ही था। स्थायी, बड़ा तथा सुन्दर होने के कारण, इसका नाम मात्र 'उर्दू' न होकर 'उर्दू'-ए-मुअल्ला' हो गया। 'मुअल्ला' अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'श्रेष्ठ'। अर्थात्, यह 'श्रेष्ठ शाही पड़ाव' था। किला होने के कारण कुछ लोग इसे 'क़िला - मुअल्ला' तथा लाल पत्थर का बना होने के कारण सामान्य लोग इसे 'लाल क़िला' भी कहते थे। इस समय तक शाही पड़ाव की भाषा कदाचित् एक निश्चित रूप ले चुकी थी, अतः इस भाषा को 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' (अर्थात् 'श्रेष्ठ शाही पड़ाव की भाषा') कहा गया। इस तरह शाहजहाँ और उसके शाहजहांनाबाद (जहाँ 'उर्दू-ए-मुअल्ला' या 'लाल क़िला' है) से उर्दू भाषा का सम्बन्ध माना गया है। इसीलिए उर्दू को कभी-कभी 'शाहजहाँनी उर्दू' भी कहते हैं। यहाँ पर यह निश्चय के साथ कहना कठिन है कि शाहजहाँ के समय में उर्दू का यह नाम चल पड़ा था या नहीं। इंशा अल्ला खाँ आदि प्राचीन लेखकों को भी इस बात में सन्देह रहा है। भाषा के नाम के रूप में 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' शब्द बड़ा था, इसलिए धीरे-धीरे प्रयोग में आने पर यह छोटा होने लगा। पहले 'मुअल्ला' शब्द हटा और यह 'जबान-ए-उर्दू' ही कही जाने लगी। इसी का अनुवाद 'उर्दू' की जबान या 'लैंग्विज ऑव् उर्दू' किया। कुछ दिन और बीतने पर 'जबान' शब्द भी छूट गया और 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' केवल 'उर्दू' रह गई।

'उर्दू' भाषा के मूल विकास की दृष्टि से देखा जाए तो इसका बीज किसी-न-किसी रूप में उसी समय पड़ा, जब १२०७ ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली को राजधानी बनाया। दिल्ली की लोकभाषा को अपने शब्द-समूह की छौक के साथ मुसलमान सिपाहियों ने उसी समय सबसे पहले अपनाया होगा। बाबर के आगमन तक स्थिरता की कमी के कारण इसका विशेष विकास नहीं हुआ। बाबर और शाहजहाँ के बीच इसने पर्याप्त उन्नति कर ली। इतनी उन्नति कर ली कि शाहजहाँ के शासन की समाप्ति के लगभग ५० वर्ष बाद ही इसमें काव्य-रचना का प्रारंभ हो गया। उस समय इस भाषा को 'हिन्द' की होने के कारण 'हिन्दी' या अरबी-फारसी शब्दों से मिश्रित होने के कारण 'रेस्ता' कहते थे।

'हिन्दुस्तानी', 'हिन्दवी', 'रेख्ता', 'हिन्दी' तथा "हिन्दवी उर्दू' आदि नामों का प्रयोग विभिन्न कालों में 'उर्दू' के लिए हुआ है। 'रेख्ता' नाम मोटे तौर पर १८ वीं सदी के प्रारम्भ से, लगभग १९ वीं के मध्य तक, विशेषतः उर्दू के लिए चलता रहा है। 'हिन्दुस्तानी' नाम फोर्ट विलियम कॉलेज के रिकार्डों में ही 'उर्दू' के लिए सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ। आगे चल कर इस सदी में प्रायः हिन्दी-उर्दू के बीच की शैली के लिए 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग हुआ है। अब भी कभी-कभी 'हिन्दुस्तानी' नाम से लिखी जाने वाली भाषा 'हिन्दुस्तानी' न होकर 'उर्दू' होती है। उर्दू के उत्पत्ति-काल से लेकर, प्रायः १९ वीं सदी के प्रथम चरण तक, 'हिन्दी' नाम 'उर्दू' के लिए भी चलता रहा। उर्दू के मीर, ग़ालिब आदि अनेक कवियों ने 'हिन्दी' शब्द का 'उर्दू' के लिए प्रयोग किया है। अन्य नामों का प्रयोग व्यापक रूप से अधिक दिनों तक लगातार न होकर कभी-कभार ही हुआ है।

वस्तुतः खड़ीबोली या आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी की तरह ही उर्दू भी मूलतः दिल्ली के आसपास की खड़ीबोली पर आधारित है, जिसमें मूल या विकसित रूप में पूर्वी पंजाबी, बांगरू तथा ब्रज भी हैं। पुरानी हिन्दी की तरह, पुरानी उर्दू में कुछ रूप अवधी के भी मिलते हैं। इस प्रकार व्याकरणिक दृष्टि से हिन्दी-उर्दू, कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः पूर्णतः एक हैं। मूल अन्तर केवल शब्दावली का है। साहित्यिक उर्दू में अरबी-फारसी शब्द अधिक होते हैं, किन्तु यह अन्तर साहित्य के स्तर पर ही अधिक है। सामान्य, व्यावहारिक या बोलचाल के स्तर पर हिन्दी-उर्दू दोनों ही, अपने कठिन संस्कृत या अरबी-फ़ारसी शब्दों को छोड़कर प्रायः एक हो जाती हैं, जिसे गांधी जी हिन्दुस्तानी कहा करते थे। इधर हिन्दी तथा उर्दू दोनों का कुछ साहित्य भी उस भाषा में लिखा गया है। इसीलिए उर्दू को हिन्दी की फ़ारसी - अरबी शब्दावली से युक्त शैली कहना अधिक समीचीन है। दोनों का व्याकरण प्रायः पूर्णतः एक होने पर, इन्हें अलग भाषाएँ मानना न तो व्यावहारिक है और न वैज्ञानिक।

उर्दू भाषा कैसे बनी, इस बात को लेकर इंशा ने कहा है कि उस काल की प्रचलित भाषा में से कुछ भाषाओं के शब्दों को निकाल कर और उनके स्थान पर कुछ शब्द रखकर तथा कुछ हेर-फेर करके उर्दू भाषा बनाई गई। इस संदर्भ में 'दरिया-ए-लता-फ़त' में लिखते हैं "यहाँ के खुशबयानों ने मुत्तफ़िक होकर मुताद्दिद जबानों से अच्छे-अच्छे लफ़्ज निकाले, और बाजी इबारतों और अल्फाज में तसर्रूफ़ करके और जबानों से अलग एक नई जबान पैदा की, जिसका नाम उर्दू रक्खा।" इसी आधार पर श्री. चन्द्रबली पांडेय ने अपनी कई पुस्तकों में यह मत प्रकट किया है कि "हिन्दी शब्दों को निकालकर तथा उनके स्थान पर अरबी-फ़ारसी आदि के शब्दों को रखकर उर्दू भाषा बनाई गई।" डॉ. उदयनारायण तिवारी भी चन्द्रबली पांडेय से सहमत हैं। वस्तुतः उर्दू वैसे ही बनी, जैसा कि संकेत किया जा चुका है। अर्थात्, तत्कालीन 'हिन्दवी' जब मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त हुई, तो सहज ही उसका व्याकरण अपना कर भी उसके सारे के सारे शब्द मुसलमान नहीं अपना सके। संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाविशेषण आदि फ़ारसी के हो प्रयुक्त होते रहे, जिनका वे फ़ारसी आदि बोलने में प्रयोग करते थे। इस प्रकार से अन्तर केवल यह है कि इंशा और उनके साथ पांडेय जी तथा डॉ. उदयनारायण तिवारी कहते हैं कि उर्दू बनाई गई, कुछ लोगों द्वारा मिलकर। किन्तु परिस्थितियाँ यह कहती हैं कि उर्दू बन गई। आज तो भाषा बनाई जा सकती है, किन्तु उस काल में जब भाषा के प्रति वर्तमान जागरूकता नहीं थी, भाषा बनाए जाने की बात गले से नीचे नहीं उतरती। इसीलिए यहाँ पर उर्दू के बन जाने की बात ही मानी जा सकती है, बनाए जाने की नहीं।

उर्दू भाषा के साहित्य के संदर्भ में उर्दू साहित्य के अध्येताओं द्वारा विरोधी मत प्रकट किए गए हैं। एक ओर तो उर्दू का आरम्भ खुसरो आदि से माना गया है तथा 'दक्खिनी' को 'दक्खिनी उर्दू' कहकर उसके पूरे साहित्य को उर्दू की सम्पत्ति माना गया है, और दूसरी ओर वली को, जो 'दक्खिनी' के अन्तिम कवि है, उर्दू का प्रथम कवि माना गया है। वस्तुतः उर्दू नाम तथा उसके वर्तमान स्वरूप को यदि दृष्टि में रखा जाय तो इसके साहित्य का प्रारम्भ १७०० के आसपास से ही माना जाना चाहिए, किन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उसकी पूर्ववर्ती भाषा को उर्दू से अलग नहीं रखा जा सकता। वास्तविकता यह है कि उर्दू, हिन्दी की ही एक शैली है, अतः अपने मूल में उर्दू उतनी ही पुरानी है, जितनी पुरानी कि हिन्दी। हाँ, स्वतंत्र शैली के रूप में इसका जन्म मुसलमानों के भारत में जमने के बाद हुआ, तथा साहित्य में इसका प्रयोग १७०० के आस-पास हुआ है और तबसे इसके इतिहास या

विकास को दो कालों में बाँटा जा सकता है। प्रथम काल लगभग १८०० के पूर्व का है और दूसरा इसके बाद का। प्रथम काल के प्रमुख कवि वली, आबरू, हातिम, दर्द, सौदा, मीर आदि है तथा दूसरे काल के मोमिन, जौक, ग़ालिब, दाग़, हाली, जिगर, इक़बाल, फ़िराक़ आदि । प्रथम काल में उर्दू भाषा में ब्रज, अवधी तथा दक्खिनी का भी प्रभाव था, किन्तु परवर्ती उर्दू प्रभावों से मुक्त हो गई । इधर पाकिस्तान के बनने के बाद, उर्दू पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा घोषित हो गई है, और इस प्रकार उसमें, अब साहित्य-रचना पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान, दोनों ही देशों में हो रही है। अभी तक दोनों देशों की उर्दू में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु सम्भावना यह है कि आगे चलकर एक ओर पाकिस्तान की उर्दू, जहाँ सिंधी-पश्चिमी पंजाबी शब्दों से कुछ युक्त होगी, तो भारतीय उर्दू में संस्कृत के कुछ तत्सम-तद्भव शब्द आ जाएँगे । पाकिस्तान के बनने के पूर्व भारत में उर्दू के दिल्ली, रामपुर, लखनऊ, हैदराबाद आदि ये चार केन्द्र थे । इन चारों, प्रमुखतः दिल्ली और लखनऊ की उर्दू में मुहावरा आदि की दृष्टि से कुछ अन्तर था । अब यह अन्तर प्रायः समाप्त हो गया है ।

५.२.४ दक्खिनी :

'दक्खिनी' हिन्दी का ही एक रूप है। उसके 'हिन्दी', 'हिन्दवी', 'दकनी', 'दखनी', 'देहलवी', 'गुजरी', 'हिन्दुस्तानी', 'जबाने हिन्दुस्तान', 'दक्खिनी हिन्दी', 'दक्खिनी उर्दू', 'मुसलमानी', 'दक्खिनी हिन्दुस्तानी' आदि दक्खिनी के नाम हैं। इसका मूल आधार दिल्ली के आसपास प्रचलित १४ वीं १५ वीं सदी की 'खड़ीबोली' है। मुसलमानों ने भारत में आने पर इस बोली को अपनाया था । मसऊद इब्नसाद, खुसरो तथा फ़रीदुद्दीन शकरगंजी आदि ने अपनी हिन्दी कविताएँ इसी में लिखी थीं। १५ वीं १६ वीं सदी में फ़ोज, फ़कीरों तथा दरवेशों के साथ यह भाषा दक्षिण भारत में पहुंची और वहां प्रमुखतः मुसलमानों में, तथा कुछ हिन्दुओं में जो उत्तर-भारत के थे, प्रचलित हो गई। इसके क्षेत्र प्रमुखतः दक्षिण भारत (बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर आदि), बरार, बम्बई तथा मध्यप्रदेश आदि हैं। ग्रियर्सन इसे हिन्दुस्तानी का बिगड़ा रूप न मानकर उत्तर भारत की 'साहित्यिक हिन्दुस्तानी' को ही इसका बिगड़ा रूप मानते हैं। डॉ. चटर्जी इसे हिन्दुस्तानी नहीं, तो उसकी सहोदरा भाषा अवश्य मानते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दक्खिनी को 'प्राचीन खड़ी-बोली' मानना चाहिए, जिसमें पंजाबी, हरियानी, ब्रज, मेवाती तथा कुछ अवधी के रूप भी हैं। दक्षिण में जाने के बाद इस पर कुछ गुजराती-मराठी का भी प्रभाव पड़ा है। यह ध्यातव्य है कि उत्तरी भारत की पंजाबी, हरियानी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं के रूपों के मिलने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि इन सब का इस पर केवल प्रभाव है । वस्तुस्थिति यह है कि उस काल की भाषा कुछ इस प्रकार की मिश्रित थी ही। सभी बोलियों का स्पष्ट अलग-अलग विकास नहीं हुआ था। कबीर ने भी इसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार, दक्खिनी बोलने वालों की संख्या लगभग साढ़े छत्तीस लाख थी। आज भी उस क्षेत्र में, दक्खिनी (उर्दू नाम से) बोली जाती है, यद्यपि यह भाषा कई दृष्टियों से बदल गई है। परिवर्तन की दृष्टि से तीन बातें उल्लेखनीय हैं -

(१) उर्दू भाषा का उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ गया है।

(२) कुछ पुराने रूप विकसित होकर कुछ-के-कुछ हो गए हैं।

(३) शब्द-समूह में क्षेत्रानुसार तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है ।

भाषा तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से इस शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया जाता है, जिसका प्रयोग दक्षिण के बहमनी वंश तथा पुर गोलकुंडा और अहमदनगर से संबंधित मुसलमान साहित्यकारों ने साहित्य के क्षेत्र में किया था | खड़ीबोली गद्य का प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ दक्खिनी में ही मिलता है। इस गद्य-ग्रन्थ का नाम 'मिराजुल आशिकीन' है, जिसके लेखक ख्वाजा बन्दानवाज (१३१८ -१४३०) हैं। दक्खिनी के साहित्यकारों में अब्दुला, वजही, निजामी, गवासी, गुलामअली तथा बेलूरी आदि प्रमुख हैं। उर्दू साहित्य का आरम्भ भी वस्तुतः दक्खिनी से ही हुआ है। उर्दू के प्रथम कवि वली ही दक्खिनी के अन्तिम कवि वली औरंगाबादी है। इस प्रकार दक्खिनी को एक प्रकार से उर्दू की जननी कह सकते हैं, यद्यपि भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। दक्खिनी की केवल लिपि ही फ़ारसी (या प्रचलित शब्दावली में उर्दू) है, अन्यथा इसकी भाषा में समान्य हिन्दी की भाँति ही, भारतीय परम्परा के शब्द पर्याप्त है। अरबी-फारसी शब्द उर्दू की तुलना में बहुत ही कम हैं। इसका क्षेत्र दक्षिण में होने के कारण ही इसका नाम दक्खिनी है। आज हिन्दीवाले, इसे 'हिन्दी' या 'दक्खिनी हिन्दी' कहकर इसे अपनी भाषा और इसके साहित्य को अपने साहित्य का अंग मान रहे हैं, और उर्दू वाले 'कदीम उर्दू' या 'दक्खिनी उर्दू' कहकर इसे अपना अंग मान रहे हैं। वस्तुतः न केवल दक्खिनी भाषा, अपितु उसका साहित्य भी हिन्दी के निकट है। कुछ अपवादों को छोड़कर उर्दू के विरुद्ध, दक्खिनी भाषा और साहित्य की आत्मा पूर्णतया भारतीय है। ऐसी स्थिति में 'दक्खिनी हिन्दी' हिन्दी ही है। किसी भी दक्खिनी गद्य-लेखक या कवि ने उसके लिए 'उर्दू' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। उर्दू नाम का प्रयोग उसके लिए उचित नहीं हैं |

'दक्खिनी' के लिए प्राचीन नाम 'हिन्दी', 'देहलवी' और 'हिन्दवी' से मिलते हैं, जिसका आशय यह है कि उत्तर भारत से, भाषा के साथ ये नाम भी गए थे। बाद में सत्रहवीं सदी के अन्तिम चरण में 'दक्खिनी' नाम प्रचलित हुआ। इसका प्रथम प्रामाणिक प्रयोग कदाचित् 'वजही' में हुआ है। वे 'कुतुबमुश्तरी' (१६३८ ई.) में लिखते हैं "दखिन में जो दखिनी मीठी बात का।" कुछ उर्दू लेखकों ने लिखा है कि दक्खिनी को बाद में 'रेख्ता' भी कहा जाता था | परंतु बात ऐसी नहीं है। दक्खिनी के अन्तिम काल के कवियों ने काव्य की एक विशेष शैली के लिए ही 'रेख्ता' का प्रयोग किया है।

इस प्रकार से हिंदी, हिन्दुस्तानी, उर्दू और दक्खिनी खड़ीबोली हिंदी के विविध रूप रहे हैं |

५.३ सारांश

प्रस्तुत इकाई में हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी का छात्रों ने विस्तार से अध्ययन किया हैं | इसमें हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी का विकास किस तरह से होता गया, तथा प्राचीन काल में खड़ीबोली का किस तरह से संबंध रहा इसे देखा हैं | साथ ही खड़ीबोली के साहित्यिक रूप का विकास किस तरह से हुआ हैं | और खड़ीबोली जनसाधारण की बोलचाल की भाषा रही है इसे विस्तार से जाना हैं |

५.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. खड़ीबोली हिंदी के विविध रूपों को संक्षेप में लिखिए |

२. खड़ीबोली हिंदी में उर्दू का क्या स्थान है उसे विस्तार से लिखिए |

३. खड़ीबोली हिंदी में हिंदी और हिन्दुस्तानी का विकास किस तरह से हुआ उसे समझाइए|

५.५ टिप्पणियाँ

१. हिंदी २. हिंदुस्तानी

३. उर्दू ४. दक्खिनी

५.६. संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२. हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३. भाषा विज्ञान - डॉ. दानबहादुर पाठक 'वर', डॉ. मनहर गोपाल भार्गव

४. हिंदी भाषा का इतिहास - धीरेंद्र वर्मा

५. भाषा विज्ञान की भूमिका - आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

*****

६

हिन्दी का शब्द समूह

इकाई की रुपरेखा

६.० इकाई का उद्देश्य
६.१ प्रस्तावना
६.२ हिन्दी का शब्द समूह
६.३ हिन्दी शब्द समूह के प्रेरणा या मूल स्त्रोत
६.४ भारतीय आर्य भाषा
६.५ भारतीय द्रविड़ भाषा
६.६ देशज भाषा
६.७ विदेशी भाषा
६.८ सारांश
६.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न
६.१० वस्तुनिष्ठ प्रश्न
६.११ संदर्भ ग्रंथ

६.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में छात्र निम्नलिखित बिंदुओ का अध्ययन करेंगे -

- इस इकाई को पढ़कर छात्र हिन्दी भाषा के शब्द भंडार के बारे में जान पायेगा।
- विद्यार्थी हिन्दी शब्दों के मूल स्त्रोत का पता लगा सकता है।
- संस्कृत भाषा से आये शब्दों के रूपों की जानकारी पा सकेगा। साथ ही वह तत्सम् और तद्भव शब्दों में अन्तर कर सकेगा।
- हिन्दी में भारतीय आर्य भाषाओं से आये शब्दों को भी जान सकेगा।
- हिन्दी में विदेशी भाषाओं से आये हुए शब्दों के बारे में जान पायेगा।

६.१ प्रस्तावना

छात्र हिंदी के शब्दों से वाकिफ है। मगर उन्हें यह पता नहीं होता कि ये हिन्दी शब्द समूह के शब्द कहाँ से आये है। उनके मन में जागरूकता आती है कि हिन्दी के शब्द किन-किन भाषाओं से हिन्दी में आये है। हिन्दी में संस्कृत, आर्य भाषा, द्रविड़ भाषा और विदेशी भाषा

के अनेक शब्द है। देशज भाषाओं से भी अनेक शब्द हिन्दी भाषा आते हैं | और देशज भाषाओं से भी अनेक शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित है। इन सब की जानकारी हमें मिलेगी।

६.२ हिन्दी का शब्द समूह

सार्थक शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं। ये वर्णों के सार्थक समूह ही शब्द कहलाता है। शब्द भाषा की स्वतंत्र इकाई है। प्रत्येक भाषा में असीमित शब्द होते हैं जो किसी-न-किसी भाव या विचार को व्यक्त करते हैं। हर भाषा इन शब्दों का भंडार होती है लेकिन ये सभी शब्द एक ही प्रकार के नहीं होते। कुछ शब्द किसी व्यक्ति, वस्तू या स्थान का नाम बताते हैं तो कुछ शब्द क्रियाओं – घटनाओं को व्यक्त करते हैं, जबकि कुछ शब्द दूसरे शब्दों की विशेषता बताते हैं। इस प्रकार से भाषा में प्रयुक्त होने वाले इन विभिन्न प्रकार के शब्दों के समुदाय को ही शब्द भंडार कहते हैं। शब्द असंख्य होते हैं तथा इसके नए-नए शब्द हर दिन जुड़ते रहते है।

हिन्दी भाषा का शब्द भंडार मुख्य रूप से संस्कृत प्रधान है क्योंकि हिंदी उस प्रदेश की भाषा है जहाँ पहले संस्कृत फिर प्राकृत और बाद में अपभ्रंश भाषाएँ प्रचलित थी। अपभ्रंश भाषा के एक भेद शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी की उत्पत्ती हुई है। इस प्रकार संस्कृत और हिन्दी का अत्यधिक घनिष्ठ संबंध है। अतः हिन्दी भाषा में संस्कृत के शब्दों का अत्याधिक मात्रा में होना स्वाभाविक है।

जब कोई जाति किसी अन्य जाति के सम्पर्क में आती है, तब वह अपने साथ अपनी भाषा को भी लाती है तथा अपने सम्पर्क में आने वाली जाति की भाषा को अपनी भाषाद्वारा प्रभावित करती है और उसकी भाषाद्वारा अपनी भाषा को भी प्रभावित होने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा में दूसरी भाषा के शब्द भी बेरोक-टोक आते रहते हैं। इस प्रकार दूसरी भाषा से आये हुए शब्द धीरे-धीरे उस भाषा के अपने अंग बन जाते हैं। कालांतर से दूसरी भाषा से आये शब्द की पहचान पाना मुश्किल हो जाता है। हिन्दी में दूसरी भाषा से आये हुए शब्दों में अधिक संख्या फारसी, तुर्की, अरबी तथा अग्रेजी शब्दों की है।

अतः कह सकते है कि अन्य समस्त भाषाओं के समान हिन्दी भाषा के शब्द-समूह में भी अनेक देशी, विदेशी, जीवित और मृत भाषाओं के शब्दों का समाहार पाया जाता है। हिन्दी एक संरचनात्मक भाषा है। इसमें संस्कृत, विभिन्न देशी भाषाओं एवं बोलियों तथा विदेशी भाषाओं के शब्द पर्याप्त मात्रा में समाहित है।

६.३ हिन्दी शब्द समूह के प्रेरणा या मूल स्त्रोत

प्रत्येक भाषा में शब्दों की संख्या असीमित होती है। शब्दों के अध्ययन में सरलता लाने के लिए इनको भिन्न-भिन्न आधारों पर विभिन्न वर्गों में बाँट लिया जाता है। जो निम्नलिखित है -

१) भारतीय आर्य भाषाओं से आये हुए शब्द

२) भारतीय द्रविड़ भाषाओं से आये हुए शब्दॉ

३) देशज् शब्द

४) विदेशज् शब्द

६.४ भारतीय आर्य भाषाओं से आये हुए शब्द

भारतीय आर्य भाषाओं से आये हुए शब्दों में संस्कृत, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि मुख्य है।

१) संस्कृत भाषा के शब्द:

हिंदी में संस्कृत शब्दों की संख्या बहुत है। संस्कृत और हिन्दी का संबंध माँ-बेटी जैसा है। इसमें संस्कृत के शब्दों की संख्या सदा से अधिक बनी रहती है। अब तो नवीन आवश्यकताओं के कारण उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। ये शब्द प्रायः दो रूप में पाये जाते हैं –

i) तत्सम शब्द:

तत्सम शब्द दों शब्दों के योग से बना है – तत् + सम। 'तत्' का अर्थ है 'उसके' और 'सम' का अर्थ है 'समान'। इस प्रकार तत्सम शब्द का अर्थ है उसके (संस्कृत) समान। अतः कह सकते हैं संस्कृत के वे शब्द जो हिंदी भाषा में बिना किसी बदलाव के प्रयोग में लाए जाते है, उन्हें तत्सम शब्द कहते हैं। जैसे – क्षेत्र, ग्राम, पत्र, चंद, दिवस आदि।

ii) तद्भव शब्द:

तद्भव शब्द दो शब्दों के योग से बना है – तत् + भव। 'तत्' का अर्थ है, उससे और 'भव' का अर्थ 'उत्पन्न' अर्थात् वे शब्द जो संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुए हैं। अतः हम कह सकते हैं कि वे शब्द जो हिंदी भाषा में परिवर्तित रूप में प्रयोग किए जाते हैं, उन्हें तद्भव शब्द कहते हैं। जैसे – खेत, गाँव, पत्ता, चाँद, दिन आदि।

यहाँ कुछ तत्सम और तद्भव शब्दों उदाहरण दिए गए हैं –

तत्सम	तद्भव
क्षेत्र	खेत
दिवस	दिन
आम्र	आम
निद्रा	नींद
सूर्य	सूरज
मयूर	मोर
भ्रमर	भौंरा
भातृ	भाई
सप्त	सात

सूत्र	सूत
गृह	घर
उलूक	उल्लू

२) मराठी से हिन्दी में आए शब्द:

हिन्दी और मराठी दोनों ही संस्कृत से निकल कर आती है। अतः हिन्दी और मराठी में बहन-बहन का संबंध है। अतः कई शब्द मराठी के हिन्दी में इस प्रकार प्रयोग किये जाते हैं, जिन्हे कह पाना मुश्किल है कि ये किस भाषा के शब्द हैं। जैसे-

खोली, पावती, भाड़ा, लागू, चालू, पगार, प्रगति, बड़ा, बाजू, कंटाला, घोटाला आदि।

३) बंगाल से हिंदी में आए शब्द:

व्यापार, गला, उपन्यास, गल्प, रसगुल्ला, नेह, भद्रलोक, छाता, आग, पैठ, टाट।

४) गुजराती भाषा से हिन्दी में आए शब्द:

हड़ताल, गरबा, कुनबी।

५) पंजाबी भाषा से हिन्दी में आए शब्द:

सिक्ख, सरदार, तन्दूर।

६.५ भारतीय द्रविड़ भाषाओं से आए हुए शब्द

समय के प्रवाह के साथ हिन्दी में अनार्य भाषाओं के अनेक शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। हिंदी में बहुत से ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं जो प्राचीन काल में द्रविड़ भाषाओं से तत्कालीन आर्य भाषाओं में ले लिए गए थे।

i) मल्यालम से हिन्दी में आये शब्द:

पूजा, साधु, पाप्पड़म, काक, चिल्लर, भंगी, तोफि, सरवतु।

ii) तेलगु से आए शब्द:

अंबार, औसंरा, उड़द, कोठरी, गुंडा, चंदा, झंडा, पिल्ला, कच्चा, पक्का, आसरा आदि।

iii) तमिल से आए शब्द:

बीस, झूठ, अभिमान, अमावसी, उपवास, कृत्रि, नीर, मति, कोड़ी, मुसीबत, उपहास, मीर।

६.६ देशज भाषाओं से आए हुए शब्द

हिंदी में हिंदी प्रदेश में बोली जानेवाली बोलियाँ एवं उपभाषाओं के अनेक शब्द आ गये है, जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं चलता है। ये सिर्फ हालचाल में प्रयोग किए जाते हैं।

जैसे – चिड़ियाँ, जूता, धड़ाम, कलाई, कटोरा, ठेस, खिड़की, झुट्टी, पेट, लात, थैला, होली, रोटी, बाजरा, अटकल, घाघरा, भोंपू, खर्राटा आदि।

६.७ विदेशी भाषाओं से आए हुए शब्द

हिंदी भाषा प्रांत अनेक विदेशियों के संपर्क में सैकड़ों वर्षों तक रहा है। मुगल और अंग्रेज शासन के कारण तुर्की, अरबी, फारसी और युरोपीय भाषाओं का इस पर व्यापक प्रभाव पड़ा है और उन भाषाओं के अनेक शब्द हिंदी में लोकप्रिय हो गए हैं। वो शब्द जो विदेशी भाषाओं से हिंदी में आए हैं उन्हें विदेशज कहते हैं। इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है -

१) एशियाई देशों से आये शब्द

२) यूरोपीय देशों से आये शब्द

१) एशियाई देशों से आये शब्द:

मुस्लिम शासन काल में अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं के शब्दों का गहरा प्रभाव भारतीय भाषाओं पर पड़ा। मुसलमानी शासन में सदैव ही फ़ारसी को दरबारी एवं साहित्य भाषा के रूप में अपनाया। तुर्की, अरबी आदि अन्य मुसलमानी भाषाओं के शब्द भी प्रायः फ़ारसी के ही माध्यम से ही होकर हिन्दी में आये हैं।

i) अरबी भाषा से आए शब्द:

अरबी भाषा के लगभग २५०० शब्द हिंदी ने ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिए है। जैसे - अमीर, अक्ल, अक्लमंद, अक्स, आवाज, आदत, आदमी, औरत, इमारत, कसूर, कसरत, कानून, किताब, खबर, खैर, जनाब, जुलूस, तहसील, तक़दीर, मुल्ला, नशा, हिसाब, मजहब आदि।

ii) फारसी भाषा से आए शब्द:

हिंदी में करीब ३५०० शब्द प्रचलित है। जैसे – अमरूद, आमदनी, आसानी, आईना, आराम, आवारगी, जुलाहा, जोश, कमीना, जिगर, दफ्तर, दर्जी, गवाह, चादर, पाजामा, बुखार, बेकार, बेरहम, बुर्का, सौदागर, मुर्गा, शादी, सितारा, हफ्ता, मुर्दा, सूद आदि।

iii) तुर्की भाषा से आए शब्द:

तुर्की भाषा की संख्या अरबी-फारसी की अपेक्षा बहुत कम है। लगभग १५० शब्द आज हिन्दी में प्रयोग किए जाते हैं। जैसे – आका, तोप, तमगा, तमाशा, कालीन, बेगम, बहादुर, मुगल, लफंगा, चेचक, चाकू, बारूद, बन्दूक, सौगात, बीबी, खंजर, लाश, चमचा, सराय आदि।

२) यूरोपीय देशों से आये शब्द:

यूरोप के निवासी लगभग सन् १५०० ई. से भारत में आन-जाने लगे थे। सन् १८०० ई. से यूरोप वासियों का हिन्दी प्रदेश के साथ निकता बढ़ी। १८०० ई. से लेकर १९४७ ई. तक अंग्रेजों ने शासन किया और अंग्रेजी को राज्य भाषा बनाया। कहने का तात्पर्य यह है कि

पिछले देढ़ दो सौ वर्षों में हिन्दी के ऊपर यूरोपीय भाषाओं का विशेषकर अंग्रेजी का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा है।

i) अंग्रेजी भाषा से आए शब्द:

आज करीब ३००० से अधिक अंग्रेजी के शब्द हिंदी में प्रयुक्त है। हिन्दी शब्द समूह में अंग्रेजी शब्दों की गहरी पैठ पड़ गई है। यहाँ तक कि हमारे अशिक्षित ग्रामवासी भी अंग्रेजी के अनेक शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे – अपील, इंजन, कम्पनी, कमीशन, कार, कॉलेज, कमेटी, कालोनी, कलेक्टर, कोट, किक्रेट, क्लब, गिलास, गैस, चाकलेट, पेन, पंप, पाईप, पाउडर, पुलिस, साईकिल, ट्रेन, प्लेट, प्रेस, मींटिग आदि।

ii) पुर्तगाली भाषा से आए शब्द:

भारत के कुछ क्षेत्रों पर पुर्तगालियों का शासन था। इस तरह कुछ पुर्तगामी शब्द हिंदी में आए। जैसे – अनन्नास, अलमारी, आलपीन, अचार, कमीज, कमरा, पीपा, सन्तरा, तौलिया, बाल्टी, चाभी, पेड़, फीता आदि।

iii) डच भाषा से आए शब्द:

हिन्दी भाषा में डच भाषा के शब्दों का कम प्रयोग होता है। जैसे – तरूप, बम।

विशेष:

कभी-कभी दो भाषाओं के मेल से सयुंक्त शब्द बन जाते है। जैसे – डाकखाना (डाक-हिंदी, खाना-फारसी) रेलमंत्री (रेल-अंग्रेजी, मंत्री-हिंदी), शेयरबाजार (शेयर-अंग्रेजी, बाजार-हिंदी) आदि |

६.८ सारांश

हिन्दी शब्द समुह में आये द्रविड़, देशी, मुसलमानी तथा यूरोपीय सभी भाषाओं के शब्द पाये जाते हैं। हिंदी में संस्कृत के ही नहीं, अन्य अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के शब्द एकदम घुल मिल गये हैं, उनका प्रयोग ऐसा स्वाभाविक हो गया है कि विदेशी लगते ही नहीं है। अतः कह सकते हैं कि शब्द-समूह की दृष्टि से हिन्दी एक प्रकार की खिचड़ी भाषा ही है।

६.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

प्र.१ हिन्दी शब्द समूह से आप क्या समझते है ? हिन्दी शब्द समूह के मूल स्त्रोत के बारे में लिखिए।

प्र.२ हिन्दी शब्द समूह में भारतीय आर्य भाषाओं से आए शब्दों की सविस्तर जानकारी दें।

प्र.३ हिन्दी शब्द समूह में द्रविड़ और देशज भाषाओं के बारे में लिखे।

प्र.४ हिन्दी शब्द समूह में विदेशी भाषाओं के बारे में लिखिए।

६.१० वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ वर्णों के सार्थक समूह को क्या कहते है ?

उ. शब्द कहते है।

प्र.२ संस्कृत के वे शब्द जो हिंदी भाषा में बिना किसी बदलाव के प्रयोग में लाए हैं, उन्हें क्या कहते है ?

उ. तत्सम शब्द।

प्र.३ हिन्दी भाषा में संस्कृत भाषा के कितने रूप देखने को मिलते है ? उनके नाम लिखिए।

उ. दो - तत्सम शब्द, तद्भव शब्द।

प्र.४ तत्सम शब्द की परिभाषा दिजिए।

उ. संस्कृत के शब्द जो बिना किसी बदलाव के हिन्दी भाषा में प्रयोग होते हैं, उन्हें तत्सम शब्द कहते हैं।

प्र.५ देशज शब्द से आप क्या समझते हैं?

उ. वे शब्द जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं चलता है, वे देशज शब्द कहलाते है।

प्र.६ 'कर्ण' शब्द का तद्भव रूप लिखिए।

उ. कान

प्र.७ 'सात' शब्द का तत्सम रूप लिखिए।

उ. सप्त।

प्र.८ 'रेल' शब्द किस भाषा का शब्द है।

उ. अंग्रेजी भाषा का।

प्र.९ संस्कृत के परिवर्तित रूप को क्या कहते है ?

उ. तद्भव शब्द।

प्र.१० 'घोटाला' शब्द किस भाषा का शब्द है।

उ. मराठी भाषा का।

६.११ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा की रचना – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश – डॉ. महेंद्र कुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका – डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना – शशि शर्मा

*****

७

देवनागरी लिपि : विशेषताएँ एवं महत्त्व

इकाई की रुपरेखा

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ देवनागरी लिपि

७.२.१ देवनागरी लिपि का विकास

७.२.२ देवनागरी लिपि का नामकरण

७.२.३ देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

७.२.४ देवनागरी लिपि की त्रुटीयाँ

७.३ सारांश

७.४ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

७.५ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

७.६ संदर्भ ग्रंथ

७.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे -

- इस इकाई को पढ़कर विद्यार्थी लिपि के बारे में अच्छे प्रकार से समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी देवनागरी लिपि के बारे में समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी देवनागरी लिपि के विकास और नामकरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|
- विद्यार्थी देवनागरी लिपि की विशेषताएँ एवं महत्त्व के बारे में सविस्तृत जानकारी पाएँगे|

७.१ प्रस्तावना

मनुष्य ने जब भाषा का विकास आरंभ किया, तब उसे ध्वनियों को निश्चित रूप देने की जरुरत महसूस हुई। फिर उसने ध्वनियों को चिन्हों के रूप शुरू कर दिए, जो लिपि कहलाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भाषा के लिखने के चिन्हों का व्यवस्थित रूप ही लिपि कहलाती है। प्रत्येक भाषा के लिखने की व्यवस्था या लिपि अलग-अलग होती है। जैसे हिंदी की लिपि देवनागरी है, अंग्रेजी की रोमन, उर्दू की फारसी, पंजाबी की गुरूमुखी है। देवनागरी लिपि भारत की कई भाषाओं में हिंदी, संस्कृत, कोंकणी, नेपाली, मराठी, मैथिली, वोड़ो आदि प्रयोग की जाती हैं।

देवनागरी लिपि का विकास ब्राहमी लिपि से हुआ है। ब्राहमी एक प्राचीन लिपि है, जिससे हिंदी, बांग्ला, गुजराती आदि लिपियों का विकास हुआ है। देवनागरी लिपि बाई से दाई ओर को लिखी जाती है। केवल उर्दू भाषा जो फारसी लिपि है दाई ओर से बाई ओर लिखी जाती है। देवनागरी लिपि की पहचान है एक क्षैतिज रेखा से है, जिसे शिरोरेखा कहते है। गुजराती भाषा में शिरोरेखा का प्रयोग नहीं करते है, यह एक शिरोरेखा विहीन लिपि है।

७.२ देवनागरी लिपि

इस घटक के अन्दर हम लिपि के उद्भव और विकास, नामकरण, विशेषताएँ एवं महत्त्व के साथ-साथ देवनागरी लिपि की त्रुटियों पर चर्चा करेंगे।

७.२.१ देवनागरी लिपि का विकास:

डॉक्टर द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार, देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट (७००-८०० ई.) के एक शिलालेख में मिलता है। प्राचीन लिपि ब्राह्मी ५ वीं सदी ई. पू. से ३५० ई. तक प्रयुक्त होती रही। इसकी दो शैलियाँ - उत्तरी तथा दक्षिणी विकसित हुई। उत्तरी शैली से ४ वीं सदी में 'गुप्त लिपि' विकसित हुई। गुप्त लिपि से ६ वीं सदी में 'कुटिल लिपि' विकसित हुई। गुप्त लिपि से ही ९ वीं सदी के लगभग 'नागरी' के प्राचीन रूप या 'प्राचीन नागरी' का विकास हुआ। इस प्राचीन नागरी का क्षेत्र उत्तरी भारत है, लेकिन दक्षिणी भारत के कुछ क्षेत्रों में भी देखने को मिलती है। दक्षिणी भारत में इसे 'नन्दिनागरी' कहते हैं। प्राचीन नागरी से ही आधुनिक नागरी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी, कैथी, मैथिलि, असमियाँ, बांग्ला आदि लिपियाँ विकसित हुई। प्राचीन नागरी से १५-१६ वीं सदी में आधुनिक नागरी का विकास हुआ।

अतः कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली से हुआ है। देवनागरी का विकास ७ वीं सदी से ही आरंभ हो चूका था। इसका उदाहरण हमें उस समय के शिलालेखों से मिलता है।

७.२.२ देवनागरी लिपि का नामकरण:

वर्तमान देवनागरी लिपि का विकास ब्राहमी लिपि की उत्तरी शैली से हुआ हैं। नागरी लिपि को 'नागरी' और 'देवनागरी' दोनों नामों से संबोधित किया जाता है। विद्वानों ने 'नागरी' शब्दार्थ में पर्याप्त मतभेद हैं | देवनागरी लिपि के नागर, नागरी या देवनागरी नाम पड़ने के अनेक कारण बताएँ गए हैं। देवनागरी के नामकरण पर विभिन्न मत प्रचलित है। ये कुछ मत है -

१) गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा सर्वाधिक प्रयोग में लाए जाने के कारण इसका नाम 'नागरी' पड़ा।

२) प्रमुख रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम 'नागरी' पड़ा।

३) कुछ विद्वानों का मानना हैं कि बौद्ध ग्रन्थ ललित-विस्तर में उल्लेखित नाम 'नाग-लिपि' ही नागरी है। परन्तु डॉ. बार्नेट का मत है कि नाग लिपि एवं नागरी लिपि दोनों सर्वथा भिन्न लिपियाँ हैं।

४) पं. आर. श्याम शास्त्री का मत है कि देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माण से पहले उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यंत्रों के बीच में अंकित किये जाते थे। इन यंत्रों को 'देवनार' और उन चिह्नों को देवनागर कहा जाता था। इन चिह्नों से ही विकसित होने के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा।

५) एक मत यह भी है कि पाटलिपुत्र को पहले 'नागर' और 'चन्द्रगुप्त' द्वितीय को 'देव' कहते थे। उन्हीं के नाम पर इस लिपि को 'देवनागरी' नाम दिया गया।

६) देवनगर अर्थात 'काशी' में प्रचार के कारण यह देवनागरी कहलाई।

७) देवभाषा संस्कृत के लिखने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया, अतः उसका नाम देवनागरी पड़ा।

८) एक मतानुसार मध्ययुग में स्थापत्य की एक शैली नागरी थी, जिसमें चतुर्भजी आकृतियाँ होती थी। नागरी लिपि में चतुर्भजी अक्षरों (प, भ, म) के कारण इसे नागरी कहा गया।

९) देवनगर स्थान से उत्पन्न होने के कारण देवनागरी नाम पड़ा।

इसमें से कोई भी मत बहुत प्रामाणिक नहीं हैं। नागरी लिपि नाम की व्युत्पत्ति का प्रश्न अभी तक अनिर्णीत है।

७.२.३ देवनागरी लिपि की विशेषताएँ:

देवनागरी लिपि भारत की प्रमुख लिपि है। देवनागरी पर्याप्त काल से भारतीय आर्य-भाषाओं की लिपि रही हैं। आज भी हिन्दी, मराठी, नेपाली तथा समस्त हिन्दी बोलियों की यही लिपि है। देवनागरी अनेक आर्य भाषाओं की लिपि है। भारतीय संविधान ने इसे राजलिपि, राष्ट्रलिपि के पद पर प्रतिष्ठित किया है। विश्व भर की लिपियों में तुलनात्मक आधार पर देवनागरी लिपि को सबसे अधिक शुद्ध, सरल और स्पष्ट माना जाता रहा है। वैज्ञानिकता की दृष्टि से देवनागरी लिपि की टक्कर संसार की कोई दूसरी लिपि नहीं ले सकती है। जब हम देवनागरी लिपि की तुलना संसार की अन्य लिपियों रोमन, अरबी, फारसी आदि से करते हैं, तो पाते हैं कि उन लिपियों की अपेक्षा देवनागरी में कुछ ऐसे गुण या विशेषताएँ है जो उसे आदर्श लिपि बना देती है। आदर्श लिपि उसे ही कहते है जो वैज्ञानिकता के आधार पर खरा उतरती हैं। देवनागरी लिपि में निम्नलिखित विशेषताएँ या गुण दिखाई पड़ते हैं –

१) देवनागरी लिपि में प्रत्येक ध्वनि, मात्रा, सुर और बलाघात के लिए अलग-अलग चिन्ह है। इसमें जो बोला जाता हैं वही लिखा जाता हैं | जबकि अन्य लिपियों में एक ध्वनि के लिए कई-कई चिह्न देखे जाते हैं। जैसे फारसी लिपि में 'स' ध्वनि के लिए 'सीन', 'स्वाद' आदि शब्दों का प्रयोग होता है, तो रोमन लिपि में 'स' के लिए 'S' और 'C' 'क' ध्वनि के लिए 'C', 'K', 'Q' का प्रयोग होता है। 'क' के लिए – Chemistry, Queen, Kolkata.

२) इस लिपि में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है, जब की संसार के अन्य लिपियों में कभी-कभी लिखित वर्णों का उच्चारण नहीं किया जाता है।

जैसे - Knife में ‘क’ का उच्चारण नहीं होता है। उसी तरह Night में ‘G’, ‘H’ का उच्चारण नहीं होता है।

३) देवनागरी लिपि में वर्णों के उच्चारण निश्चित है, जबकी अन्य लिपियों में कोई अक्षर कहीं कुछ बोला जाता है, तो कहीं कुछ।

जैसे – ‘But’ का उच्चारण ‘बट’ जबकी ‘Put’ का उच्चारण ‘पुट’ होता है।

४) देवनागरी लिपि में जो बोला जाता है वही लिखा जाता है, जो लिखा जाता है वही उच्चरित किया जाता है, अर्थात् उच्चारण के अनुसार लेखन करते हैं। फारसी लिपि में ‘जीम’, ‘दाल’ वर्ण हैं, जबकी इनका उच्चारण ‘ज’ और ‘द’ होता है। रोमन लिपि में H (एच), टी (T), एस (S) का उच्चारण ‘ह’, ‘स’, ‘ट’ घेता है।

५) देवनागरी लिपि के वर्ण अत्यंत कलात्मक सुंदर एवं सुगठित ढंग से लिखे जाते हैं और इस लिपि में अपेक्षाकृत स्थान भी कम घेरते हैं।

जैसे – कमल - Kamala, महेश्वर-Maheshwara.

६) देवनागरी लिपि के अक्षरों का वर्गीकरण में स्वर और व्यंजन के नाम से अलग-अलग हैं जब कि अन्य लिपियों में स्वर और व्यंजन एक ही साथ पाये जाते हैं। देवनागरी लिपि में ‘अ’ को छोड़कर शेष सभी स्वरों का ह्रस्व और दीर्घ का विभाजन अत्यंत वैज्ञानिक है। व्यंजनों के उच्चारण के अनुसार वर्गीकरण देवनागरी की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

७) देवनागरी लिपि में वर्ण ध्वनियों के उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर पंक्तिबद्ध किये गये है। जैसे ध्वनियों का उच्चारण कंठ्य से शुरू होकर ओष्ठों तक संपन्न होती है।

८) देवनागरी लिपि में छोटे-बड़े वर्णों की उलझन नहीं है जब कि रोमन वर्णों में यह समस्या बनी रही है।

जैसे- AB/ab, CH/ch.

९) देवनागरी लिपि अत्यंत गत्यात्मक और व्यावहारिक लिपि है। इसमें आवश्यकतानुसार अनेक ध्वनि-चिह्नों का समावेश होता रहा है। पहले इसमें जिह्वा मूल ध्वनियों (क़, ख़, ग़, ज़, फ़) के लिए चिह्न थे, परन्तु आवश्यकतानुसार बाद में अपना लिया गया।

१०) देवनागरी लिपि अन्य भाषाओं को सरलता से ग्रहण कर लेती है। देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखन तथा उच्चारण शुद्धता के लिए अन्य लिपियों को बोहचक अपना लेती है।

उदाहरण:

i. फारसी लिपि के प्रभाव से नागरी लिपि में नुक्ता अर्थात बिन्दु का प्रयोग होने लगा।

जैसे- क़, ख़, ग़, ज़, फ़।

ii. मराठी लिपि से 'श्र' के स्थान पर 'अ', 'लृ' के जगह पर ल/क का प्रचलन शुरू हुआ।

११) देवनागरी लिपि स्वर और व्यंजन आदि ध्वनियों का क्रम वैज्ञानिक ढंग से निर्धारित किया गया है। इसके पीछे एक सुनिश्चित सिद्धांत या नियम है। ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का अंतर उनकी आकृति में थोड़ा परिवर्तन करके किया जाता है।

१२) अंग्रेजी लिपि में एक ध्वनि के लिए दो चिह्नों का योग करना पड़ता है। जैसे 'ख' के लिए KH, 'घ' के लिए GH मगर देवनागरी लिपि में इस प्रकार की कोई अवस्था नहीं हैं।

१३) देवनागरी लिपि की सबसे खास बात है कि यह लिपि सुपाठ्य और संदेह रहित है।

१४) देवनागरी लिपि अक्षरात्मक एवं वर्णनात्मक दोनों है। भाषा में प्रयुक्त हर व्यंजन और हर स्वर के लिए अलग-अलग चिह्न होने चाहिए। नागरी में 'क', 'ख', 'ग' आदि व्यंजन और स्वर मिले हुए हैं। इसी कारण इसे अक्षरात्मक लिपि मानते है। यदि व्यंजन के पूर्ण रूप में कोई और स्वर न लगा हो, तो ह्रस्व 'अ' जुड़ा रहता है। 'अ' के कारण आक्षरिक मान लिया जाता है। जब कि देवनागरी लिपि वर्णात्मक है। अतः कह सकते है कि देवनागरी लिपि अक्षरात्मक और वर्णनात्मक दोनों के रूप होते हैं।

१५) इस लिपि में 'अ' को छोड़कर शेष सभी स्वरों की ह्रस्व एवं दीर्घ मात्राएँ विद्यमान हैं, जिससे व्यंजन के साथ उनका प्रयोग बड़ी सरलता से हो सकता है।

१६) कोई भी लिपि टंकन में सरल और कम खर्चीली होनी चाहिए। यह विशेषता या गुण देवनागरी में है। थोड़ा सा परिवर्तन करके किसी टाइपराइटर में देवनागरी लिपि में टाइपिंग कर सकते हैं।

१७) लिखने में त्वरा भी लिपि का एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण गुण है। आशुलेखन की दृष्टि से भी लिपि अनुकूल होनी चाहिए। देवनागरी में त्वरा और आशुलेखन की क्षमता है।

१८) अंग्रेजी भाषा का अधिक प्रभाव होने के कारण ध्वनियों या उच्चारण की शुद्धता के कारण हिन्दी में एक नई ध्वनि 'ऑ' का प्रयोग शुरू किया गया।

जैसे- कॉलेज, डॉक्टर, ऑफिस आदि। जब अन्य भाषाओं में इस प्रकार के बदलाव की सुविधा न के बराबर है।

अतः कह सकते हैं कि देवनागरी लिपि अपनी इन विशेषताओं के कारण सरल और वैज्ञानिक लिपि है।

७.२.४ देवनागरी लिपि की त्रुटीयाँ:

देवनागरी लिपि एक श्रेष्ठ और वैज्ञानिक लिपि होने के साथ-साथ इसमें कुछ दोष और त्रुटियाँ भी पाई जाती है। जो निम्नलिखित है:

१. देवनागरी लिपि में एक ही ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न होते हैं।

i. 'र' के लिए ' ' (र्क) और ' ' (क्र), ' ' (ट्र) आदि चिह्नों का प्रयोग होता है।

ii. 'ल' के लिए और ल चिह्न का प्रयोग।

iii. 'अ' के लिए ऋ और अ चिह्न का प्रयोग।

iv. 'ण' के लिए और ण चिह्न का प्रयोग।

v. 'झ' के लिए

vi. 'श' के लिए

२) इस लिपि में मात्राओं के प्रयोग की कोई एक व्यवस्था नहीं है। कहीं कोई मात्रा ऊपर लगती है, कहीं नीचें लगती है, कहीं आगे लगती, कहीं पीछे लगती है।

जैसे- के, कू, कि, की |

३) सयुक्त व्यंजनों के लिखने के ढंग समान नहीं है।

i. कहीं पहला व्यंजन आधा लिखा जाता है- गुप्त, अम्ब।

ii. कहीं दूसरा व्यंजन आधा लिखा जाता है- ड्रामा, क्रम, भ्रम।

iii. कहीं तो नया रूप हो जाता है- क्+ष=क्ष

त्+र=त्र

ज्+ञ=ज्ञ

४) अनुनासिक वर्णों: ङ, ञ का कार्य केवल (.) अनुस्वार चिह्न से ही चल सकता है। अतएवं लिपि में उनका व्यवहार व्यर्थ ही प्रतीत होता है।

५) संयुक्त व्यंजन 'ज्ञ' उच्चारण अब 'ग्य' हो गया है। अत एवं इसके अनुसार लिपि चिह्न में भी परिवर्तन होना चाहिए।

६) 'ख' लिपि चिह्न पढ़ने में प्रायः भ्रांति होती है। खाना को रवाना भी पड़ा जा सकता है।

७) शिरोरेखा की गड़बड़ी से भी कई बार गलतियाँ हो जाती है। जैसे 'म' के ऊपर शीघ्रता में पूरी शिरोरेखा हो गई तो तो म पढ़ा जायेगा। उदा -

'भरा' का 'मरा' पढ़ा जायेगा।

'धड़ा' का 'घड़ा' पढ़ा जाएगा।

८) देवनागरी लिपि में अनेक शब्दों के लेखन में ध्वनियों का प्रयोग होता है और उच्चारण में कुछ और। जैसे मर्म शब्द में पाँच ध्वनियाँ हैं = म्+अ+र्+म्+अ किंतु लेखन में केवल तीन रह जाता है।

९) कुछ ध्वनियों का मूल उच्चारण अब यथावत नहीं रह गया हैं, किंतु उनका प्राचीन चिह्न ज्यों का त्यों व्यवहार में ला रहे हैं। जैसे- ऋ। ऋ का उच्चारण रि होता है, किन्तु ऋषि, ऋतु आदि शब्दों में लिखे वही पुराने चिह्न जा रहे है। लगभग यह स्थिति 'ष' की है। इसका उच्चारण भी 'स' या 'श' हो गया है।

१०) अनुस्वार और चंद्रबिंदु के प्रयोग में मन-मानी चल रही है। कभी चंद्रबिंदु लगा देते है कभी नहीं लगाते है। जैसे 'नहीं' में चन्द्रबिन्दु अब लगाने की रीति उठ गई है।

११) नागरी में वर्णों की संख्या अधिक है, इसलिए उसे सीखने में तथा उसके टंकण मुद्रण आदि में कठिनाई होती है।

इन कमिओं को दूर कर देवनागरी लिपि एक श्रेष्ठ आदि लिपि बन सकती है।

७.३ सारांश

प्रस्तुत इकाई में देवनागरी लिपि का विकास और देवनागरी लिपि के नामकरण की चर्चा हुई। इसी के साथ देवनागरी लिपि की विशेषता एवं महत्त्व की जानकारी दी गई। किन विशेषताओं के कारण देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि मानी जाती है। देवनागरी लिपि की खामिओं पर भी प्रकाश ड़ाला गया। इन कमियों को दूर कर आदर्श लिपि की श्रेणी में कैसे बनी रह सकती है। इस पर भी चर्चा हुई है।

७.४ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्र.१ देवनागरी लिपि के विकास और नामकरण पर प्रकाश ड़ालिए।

प्र.२ देवनागरी लिपि के विशेषताओं एवं महत्त्व की चर्चा कीजिए।

प्र.३ देवनागरी लिपि किस तरह वैज्ञानिक एवं एक आदर्श लिपि है ? इस बात पर अपने मत लिखिए।

प्र.४ देवनागरी लिपि की त्रुटियों पर चर्चा कीजिए।

७.५ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१) देवनागरी लिपि का विकास किस लिपि से हुआ है ?

उ. ब्राह्मी लिपि के उत्तरी शैली से।

प्र.२) देवनागरी लिपि का विकास किस सदी से माना जाता है ?

उ. सातवीं सदी से।

प्र.३) दक्षिणी भारत में नागरी लिपि को किस नाम से जाना जाता है ?

उ. 'नन्दि नागरी' के नाम से।

प्र.४) देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग किस राजा ने किया ?

उ. गुजरात के राजा नरेश जय भट्ट ने प्रयोग किया था।

प्र.५) त्रिकोण यंत्रों को क्या कहते हैं ?

उ. देवनागर कहते हैं।

प्र.६) भारतीय संविधान में देवनागरी लिपि को किस पद पर प्रतिष्ठित किया है ?

उ. राज लिपि, राष्ट्र लिपि के पद पर।

प्र.७) पंजाबी भाषा की लिपि क्या है ?

उ. गुरूमुखी।

प्र.८) उर्दू भाषा की लिपि क्या है ?

उ. फारसी लिपि।

प्र.९) शिरोरेखा विहीन लिपि किसकी है ?

उ. गुजराती भाषा की।

प्र.१०) पाटिलपुत्र को पहले के समय में किस नाम से जाना जाता था ?

उ. 'नागर' के नाम से।

७.६ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा की रचना – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश – डॉ. महेंद्र कुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका – डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना – शशि शर्मा

*****

८

संधि : अर्थ, स्वरूप तथा प्रमुख भेद

इकाई की रूपरेखा

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ संधि : अर्थ एवं स्वरूप

८.३ संधि के प्रमुख भेद

८.४ स्वर संधि और उसके भेद

८.५ व्यंजन संधि और उसके परिवर्तन के नियम

८.६ विसर्ग संधि और उसके परिवर्तन के नियम

८.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

८.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

८.१० संदर्भ ग्रंथ

८.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में छात्र निम्नलिखित बिंदुओं का अध्ययन करेंगे -

- इस इकाई को पढ़कर विद्यार्थी संधि के बारे में अच्छे प्रकार से समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी संधि के भेद के बारे में समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी स्वर संधि और उसके भेद के बारे में समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी व्यंजन संधि तथा व्यंजन संधि के नियम के बारे में समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी विसर्ग संधि तथा उसके नियम के बारे में समझ सकेंगे।

८.१ प्रस्तावना

शब्द का निर्माण ध्वनियों के मेल से होता है। मुख्य रूप से वर्णों के मेल या जोड़ को ही संधि कहते है। वर्णों के मेल के कुछ नियम होते है। कभी-कभी दो स्वर आपस में मिलकर कुछ परिवर्तन करते हैं, तो कभी स्वर और व्यंजन भी आपस में मिलकर परिवर्तन लाते हैं। इसी प्रकार विसर्ग और स्वर या व्यंजन के आपस में मिलने पर भी परिवर्तन होता है। इन्ही सभी परिवर्तनों को हम इस इकाई में सविस्तार से चर्चा होगी।

८.२ संधि : अर्थ एवं स्वरूप

संधि का सामान्य अर्थ है, जोड़ या मेल। संधि शब्द दो शब्दों के मेल से बना है, सम + धि। जिसका अर्थ है मेल। मुख्य रूप से वर्णों के मेल या जोड़ ही संधि कहते है | जैसे-

देव + आलय = देवालय

उल् + लास = उल्लास

दूः + जन = दुर्जन

जब दो ध्वनियाँ निकट होने पर आपस में मिल जाती हैं और एक नया रूप धारण कर लेती हैं, तो वहाँ ध्वनियों की संधि होती है।

परिभाषा:

दो समीपवर्ती वर्णों के पास-पास आने के कारण उनमें जो विकार सहित मेल होता है, उसे 'संधि' कहते हैं।

संधि-विच्छेद:

विच्छेद का अर्थ है अलग करना। यदि संधि के नियमों के अनुसार मिले हुए वर्णों को अलग-अलग करके संधि से पहले की स्थिति में पहूँचा दिया जाए तो इसे 'संधि-विच्छेद' कहा जाता है। संधि में दो ध्वनियों का मेल होता है, तो विच्छेद में उसे अलग-अलग करके दिखाया जाता है | जैसे -

संधि – विच्छेद

महेश = महा + ईश

स्वागत = सु + आगत

निषेध = निः + सेध

संयोग और संधि में अंतर:

संयोग के वर्णों का मेल होता है, उनमें परिवर्तन नहीं होता। पर संधि के कारण वर्णों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे-

संयोग	**संधि**
मनुष्य + ता	जगत् + नाथ = जगन्नाथ
पशु + ता	दुः + गम = दुर्गम

८.३ संधि के प्रमुख भेद

संधि के तीन भेद होते है:

१) स्वर संधि

२) व्यंजन संधि

३) विसर्ग संधि

१) स्वर संधि:

दो स्वरों के मिलने से होने वाले विकार या परिवर्तन को स्वर संधि कहते है। जैसे-

पुस्तक + आलय = पुस्तकालय

↓ ↓ ↓

अ + आ आ

महा + आत्मा = महात्मा

↓ ↓ ↓

आ + आ आ

२) व्यंजन संधि:

व्यंजन के बाद स्वर या व्यंजन के आने से जो परिवर्तन होता है, उसे व्यंजन संधि कहते है। जैसे-

वाक् + ईश = वागीश

क् + ई = गी

जगत् + नाथ = जगन्नाथ

त् + न = न्न

३) विसर्ग संधि:

किसी भी शब्द को अंत में लगे विसर्ग के बाद स्वर या व्यंजन आने पर विसर्ग में परिवर्तन होता है, उसे विसर्ग संधि कहते है। जैसे-

तपः + भूमि = तपोभूमि

निः + आशा = निराशा

८.४ स्वर संधि और उसके भेद

१) स्वर संधि:

स्वर के बाद स्वर के मेल से उनमें जो विकार-सहित परिवर्तन होता है, उसे 'स्वर संधि' कहते हैं। जैसे-

परम + अणु = परमाणु

देव + आलय = देवालय

स्वर संधि के पाँच भेद होते है:

क) दीर्घ संधि

ख) गुण संधि

ग) वृद्धि संधि

घ) यण संधि

ड़) अयादि संधि

क) दीर्घ संधि:

जब दो सवर्ण स्वर पास आकर तथा परस्पर मिलकर उसी वर्ण का दीर्घ स्वर बन जाते हैं तो उसे दीर्घ संधि कहते है। जैसे-

परिवर्तन नियम:

अ + अ = आ

१) परम + अणु = परमाणु

२) परम + अर्थ = परमार्थ

३) राम + अवतार = रामावतार

अ + आ = आ

१) हिम + आलय = हिमालय

२) देव + आलय = देवालय

३) नील + आकाश = नीलाकाश

आ + अ = आ

१) सीमा + अंत = सीमांत

२) यथा + अवसर = यथावसर

३) परा + अस्त = परास्त

आ + आ = आ

१) विद्या + आलय = विद्यालय

२) महा + आत्मा = महात्मा

३) कारा + आवास = कारावास

इ + इ = ई

१) रवि + इंद्र = रवींद्र

२) कवि + इंद्र = कवींद्र

३) अति + इव = अतीव

इ + ई = ई

१) कवि + ईश = कवीश

२) कपि + ईश = कपीश

३) प्रति + ईश = प्रतीक्षा

ई + इ = ई

१) नारी + इंद्र = नारींद्र

२) मही + इंद्र = महींद्र

३) देवी + इच्छा = देवीच्छा

ई + ई = ई

१) मही + ईश = महीश

२) नारी + ईश्वर = नारीश्वर

३) नदी + ईश = नदीश

उ + उ = ऊ

१) गुरु + उपदेश = गुरूपदेश

२) लघु + उत्तर = लघुत्तर

३) भानु + उदय = भानुदय

उ + ऊ = ऊ

१) लघु + ऊर्मि = लघुर्मि

२) सिंधु + ऊर्मि = सिंधुर्मि

३) लघु + ऊर्जा = लघुर्जा

ऊ + उ = ऊ

१) वधू + उत्सव = वधूत्सव

२) भू + उन्नति = भून्नति

३) भू + उद्धार = भूद्धार

ऊ + ऊ = ऊ

१) वधू + ऊर्मि = वधूर्मि

२) भू + ऊर्ध्व = भूर्ध्व

ख) गुण संधि:

जब अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनों के स्थान पर 'ए', यदि 'उ' या 'ऊ' हो ते दोनों के स्थान पर 'ओ' और यदि 'ऋ' हो तो 'अर्' हो जातो है।

परिवर्तन नियम:

१) अ या आ के बाद इ या ई निलकर 'ए' होता है।

अ + इ = ए

१) नर + इंद्र = नरेंद्र

२) देव + इंद्र = देवेंद्र

३) भारत + इंद्र = भारतेंदु

४) स्व + इच्छा = स्वेच्छा

अ + ई = ए

१) गण + ईश = गणेश

२) नर + ईश = नरेश

३) परम + ईश्वर = परमेश्वर

आ + इ = ए

१) महा + इंद्र = महेंद्र

२) यथा + इष्ट = यथेष्ट

३) राजा + इंद्र = राजेंद्र

आ + ई = ए

१) महा + ईश = महेश

२) महा + ईश्वर = महेश्वर

३) लंका + ईश = लंकेश

२) अ या आ के बाद उ या ऊ मिलकर 'ओ' होता है।

अ + उ = ओ

१) नर + उत्तम = नरोत्तम

२) प्रश्न + उत्तर = प्रश्नोत्तर

३) सर्व + उत्तर = सर्वोत्तम

अ + ऊ = ओ

१) नव + ऊढा = नवोढा

२) सागर + ऊर्मि = सागरोर्मि

३) जल + ऊर्मि = जलोर्मि

आ + उ = ओ

१) महा + उदय = महोदय

२) महा + उत्सव = महोत्सव

३) गंगा + उदक = गंगोदक

आ + ऊ = ओ

१) गंगा + ऊर्मी = गंगोर्मि

२) रंभा + ऊरु = रंभोरू

३) दया + ऊर्मी = दयोर्मि

३) अ या आ के बाद ऋ मिलकर 'अर्' होता है।

अ + ऋ = अर्

१) देव + ऋषी = देवर्षि

२) सप्त + ऋषी = सप्तर्षि

३) ब्रह्म + ऋषी = ब्रह्मर्षि

आ + ऋ = अर्

१) महा + ऋषी = महर्षि

२) राजा + ऋषी = राजर्षि

३) ब्रह्मा + ऋषी = ब्रह्मार्षि

ग) वृद्धि संधि:

जब 'अ' या 'आ' के बाद ए या ऐ हो तो दोनों के स्थान पर 'ऐ', यदि 'ओ' या 'औ' हो तो दोनों के स्थान पर 'औ' हो जाता है।

परिवर्तन नियम:

१) अ या आ के बाद ए या ऐ मिलकर 'ऐ' होता है।

अ + ए = ऐ

१) एक + एक = एकैक

२) लोक + एषण = लोकैषण

अ + ऐ = ऐ

१) मत + ऐक्य = मतैक्य

२) राज + ऐश्वर्य = राजैश्वर्य

आ + ए = ऐ

१) तथा + एव = तथैव

२) सदा + एव = सदैव

आ + ऐ = ऐ

१) महा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य

२) राजा + ऐश्वर्य = राजैश्वर्य

२) अ या आ के बाद ओ या औ मिलकर 'औ' होता है।

अ + ओ = औ

१) जल + ओध = जलौध

२) परम + ओज = परमौज

आ + ओ = औ

१) महा + ओज = महौज

२) महा + औध = महौध

अ + औ = औ

१) जल + औध = जलौध

२) वन + औषध = वनौषध

आ + औ = औ

१) महा + औदार्य = महौदार्य

२) महा + औषध = महौषध

घ) यण संधि:

जब इ या ई के बाद इ वर्ण के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर आता है तो इ - ई के स्थान पर 'य' हो जाता है। यदि उ या ऊ के बाद उ वर्ण के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर आता है तो, उ या ऊ का व् तथा ऋ के बाद ऋ के अतिरिक्त कोई भिन्न स्वर आता है तो ऋ का र् हो जाता है।

परिवर्तन नियम:

१) इ या ई के बाद इ वर्ण के अतिरिक्त अन्य स्वर आए तो इ या ई का य् हो जाता है।

इ + अ = य्

१) यदि + अपि = यद्यपि

२) अति + अधिक = अत्याधिक

इ + आ = या

१) परि + आवण = पर्यावरण

२) अति + आचार = अत्याचार

ई + अ = य्

१) नदी + अर्पण = नद्यर्पण

२) देवी + अर्पण = देव्यर्पण

ई + आ = या

१) देवी + आलय = देव्यालय

२) सखी + आगमन = सख्यागमन

इ + उ = यु

१) अभि + उदय = अभ्युदय

२) प्रति + उत्तर = प्रत्युत्तर

इ + ऊ = यू

१) नि + ऊन = न्यून

२) वि + ऊह = व्यूह

ई + उ = यु

१) सखी + उचित = सख्युचित

२) नदी + उद्यगम = नद्युद्गम

इ + ए = ये

१) प्रति + एक = प्रत्येक

२) अधि + एषणा = अध्येषणा

ई + ऐ = यै

१) नदी + ऐश्वर्य = नद्यैश्वर्य

२) सखी + ऐश्वर्य = सख्यैश्वर्य

इ + अं = यं

१) प्रति + अंग = प्रत्यंग

२) प्रति + अंचा = प्रत्यंचा

२) उ या ऊ के बाद उ वर्ण के अतिरिक्त अन्य स्वर आए तो उ या ऊ का व् हो जाता है।

उ + अ = व्

१) सु + अच्छ = स्वच्छ

२) अनु + अय = अन्वय

उ + आ = वा

१) गुरु + आदेश = गुर्वादेश

२) सु + आगत = स्वागत

ऊ + आ = वा

१) वधू + आगमन = वध्यागमन

उ + इ = वि

१) अनु + इत = अन्वित

२) अनु + इति = अन्विति

उ + ई = वी

१) अनु + ईक्षण = अन्वीक्षण

२) अनु + ईक्षक = अन्वीक्षक

उ + ए = वे

१) अनु + एषण = अन्वेषण

२) अनु + ऐषक = अन्वेषक

३) ऋ के बाद ऋ के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर आने पर ऋ का 'र्' हो जाता है।

ऋ + अ = र्

१) पितृ + अनुमति = पित्रानुमति

२) मातृ + अनुमति = मात्रानुमति

ऋ + आ = रा

१) पितृ + आदेश = पित्रादेश

२) पितृ + आलय = पित्रालय

ऋ + उ = रु

१) पितृ + उपदेश = पित्रुपदेश

२) मातृ + उपदेश = मात्रुपदेश

ऋ + इ = रि

१) मातृ + इच्छा = मात्रिच्छा

२) पितृ + इच्छा = पित्रिच्छा

ड़) अयादि संधि:

'ए' या 'ऐ' के बाद 'ए' वर्ण के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर आता है तो 'ए' का 'अय्' तथा 'ऐ' का 'आय्' हो जाता है। यदि 'ओ' या 'औ' के बाद 'ओ' व्रण के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर आता है तो ओ का 'अव्' तथा औ का 'आव्' हो जाता है। इसे 'अयादि संधि' के नाम से जाना जाता है।

परिवर्तन नियम:

१) 'ए' के बाद अ आए तो 'अय्' बन जाता है:

ए + अ = अय्

१) चे + अन = चयन

२) ने + अन = नयन

ऐ + अ = आय्

१) नै + अक = नायक

२) गै + अक = गायक

ऐ + इ = आयि

१) नै + इका = नायिका

२) गै + इका = गायिका

ओ + अ = अव्

१) भो + अन = भवन

२) पो + अन = पवन

ओ + इ = अवि

१) भो + इष्य = भविष्य

२) पो + इत्र = पवित्र

औ + अ = आव्

१) पौ + अक = पावक

२) पौ + अन = पावन

औ + इक = अवि

१) नौ + इक = नाविक

औ + उ = आवु

१) भौ + उक = भावुक

८.५ व्यंजन संधि और उसके परिवर्तन के नियम

व्यंजन संधि:

व्यंजन के बाद स्वर या व्यंजन के आने से जो परिवर्तन होता है, उसे व्यंजन संधि कहते हैं। जैसे-

- वाक् + ईश = वागीश
- जगत् + नाथ = जगन्नाथ

व्यंजन संधि के नियम इस प्रकार है:

१) क्, च्, ट्, प् के पश्चात यदि किसी वर्ग का तीसरा या चौथा वर्ण (ग, ध, ज, झ, ढ, द, ध, ब, भ) य, र, ल, व, ह या कोई स्वर आ जाए तो वह अपने वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है अर्थात क् का ग्, च् का ज्, ट् का ड्, त् का द् और प् का ब् हो जाता है, जैसे-

क् का ग् -

१) दिक् + दर्शन = दिग्दर्शन

२) वाक् + ईश = वागीश

च् का ज् -

१) अच् + अंत = अजंत

ट् का ड् -

१) षट् + आनन = षडानन

प् का ब् -

१) अप् + ज = अब्ज

त् का द् -

१) सत् + वाणी = सद्वाणी

२) जगत् + ईश = जगदीश

३) सत् + उपयोग = सदुपयोग

२) वर्ग के पहले वर्ण का पाँचवे वर्ण में परिवर्तन:

किसी वर्ग के पहले या तीसरे व्यंजन के बाद यदि कोई नासिक्य व्यंजन (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) आ जाता है तो पहले / तीसरे व्यंजन के स्थान पर अपने ही वर्ग का नासिक्य व्यंजन आ जाता है अर्थात क् का ङ्, च् का ञ्, ट् का ण्, त् का न् और प् का म् हो जाता है। जैसे-

क् का ङ् -

१) वाक् + मय = वाङ्मय

ट् का ण् -

१) षट् + मुख = षण्मुख

त् का न् -

१) सत् + मार्ग = सन्मार्ग

२) तत् + मय = तन्मय

३) उत् + नति = उन्नति

३) 'त' संबंधी विशेष नियम:

i. यदि 'त्' व्यंजन के बाद च या छ हो तो 'च', ज या झ होने पर 'ज', ट या ठ होने पर 'ट', ड या ढ होने 'ड़' और ल हो तो 'ल्' हो जाता है। जैसे-

१) उत् + चरित्र = उच्चरित

२) उत् + छिन्न = उच्छित

३) सत् + जन = सज्जन

४) उत् + ज्वल = उज्वल

५) तत् + टीका = तट्टीका

६) उत् + ड़यन = उड्डयन

७) उत् + लेख = उल्लेख

८) तत् + लीन = तल्लीन

ii. यदि 'त्' के बाग 'श' आए तो 'त्' का 'च्' तथा 'श' का 'छ' हो जाता है। जैसे-

१) उत् + श्वास = उच्छवास

२) तत् + शंकर = तच्छंकर

३) सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र

iii. यदि 'त्' के बाद 'ह' व्यंजन आए तो 'त्' का 'द्' तथा 'ह' का 'ध' हो जाता है। जैसे-

१) उत् + हार = उद्धार

२) उत् + हरण = उद्धरण

३) पद् + हति = पद्धति

४) 'छ' संबंधी नियम:

यदि किसी स्वर के बाद 'छ' वर्ण आए तो छ से पहले च् वर्ण जुड़ जाता है। जैसे-

१) स्व + छंद = स्वच्छंद

२) परि + छेद = परिच्छेद

३) अनु + छेद = अनुच्छेद

५) 'म' संबंधी नियम:

i. 'म्' के बाद जिस वर्ग का व्यंजन आता है, अनुस्वार उसी के वर्ग का नासिक्य (ड्, ञ, ण्, न्, म्) अथवा अनुस्वार बन जाता है। जैसे-

१) अहम् + कार = अहंकार (अहङ्कार)

२) सम् + भव = संभव (सम्भंव)

३) सम् + चय = संचय (सञ्चय)

४) सम् + तोष = संतोष (सन्तोष)

ii. ‘म्’ के बाद यदि य, र, ल, व, श, ह व्यंजन हो तो ‘म्’ का अनुस्वार हो जाता है। जैसे-

१) सम् + हार = संहार

२) सम् + योग = संयोग

३) सम् + रचना = संरचना

iii. ‘म्’ से परे यदि म वर्ण आए तो म् का द्वित्व हो जाता है। जैसे-

१) सम् + मान = सम्मान

२) सम् + मुख= सम्मुख

६) न् का ण् का नियम:

यदि ‘ऋ’ ‘र’ तथा ‘ष’ के बाद ‘न’ व्यंजन आता है, तो उसका ‘ण’ में परिवर्तन हो जाता है। भले ही बीच में क – वर्ग, प – वर्ग, अनुस्वार ‘य’, ‘व’, ‘ह’ आदि में से कोई वर्ण क्यों न आ जाए। जैसे-

१) परि + मान = परिमाण

२) ऋ + न = ऋण

३) परि + नाम = परिणाम

४) वर् + न = वर्ण

५) कृष् + न = कृष्ण

६) शोष् + अन = शोषण

७) स् का ष् का नियम:

यदि ‘स’ व्यंजन से पूर्व अ, आ से भिन्न कोई भी स्वर आ जाता है, तो ‘स’ का परिवर्तन ‘ष’ में हो जाता है। जैसे-

१) अभि + सेक = अभिषेक

२) नि + सेध = निषेध

३) वि + सम = विषम

४) नि + सिद्ध = निषिद्ध

८.६ विसर्ग संधि और उसके परिवर्तन के नियम

विसर्ग संधि:

किसी भी शब्द के अंत में लगे विसर्ग के बाद स्वर या व्यंजन आने पर विसर्ग में परिवर्तन होता है उसे विसर्ग संधि कहते है। जैसे-

- तपः + भूमि = तपोभूमि
- निः + ठुर = निष्ठुर

विसर्ग संधि के नियम निम्न प्रकार है:

१) विसर्ग का श्, ष्, स:

यदि विसर्ग के बाग 'च', 'छ' व्यंजन हो तो विसर्ग का 'श्' में 'ट', 'ठ' व्यंजन हो तो 'ष्' तथा 'त', 'थ' व्यंजन हो तो 'स' हो जाता है। जैसे -

१) निः + चल = निश्चय

२) निः + ठुर = निष्ठुर

३) धनुः + टंकार = धनुष्टंकार

४) निः + छल = निश्छल

५) मनः + ताप = मनस्ताप

६) नमः + ते = नमस्ते

२) विसर्ग में कोई परिवर्तन न होना –

i) यदि विसर्ग के बाद 'श' / 'ष' / 'स' में से कोई व्यंजन आए तो विसर्ग में कोई परिवर्तन नहीं होता है अथवा विसर्ग आगे के व्यंजन का रूप ले लेता है | जैसे –

१) नि: + संदेह = नि:संदेह / निस्संदेह

२) दु: + सह = दुस्सह

३) नि: + संतान = निस्संतान

४) दु: + साहस = दुस्साहस

ii) विसर्ग के बाद यदि 'क' / 'ख' अथवा 'प' / 'फ' व्यंजन आए तो विसर्ग में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे -

१) अंतः + करण = अंतःकरण

२) प्रातः + काल = प्रातःकाल

लेकिन यदि विसर्ग के पहले 'इ / उ' स्वर हो तो विसर्ग का 'ष्' हो जाता है। जैसे-

१) निः + कपट = निष्कपट

२) निः + फल = निष्फल

३) दुः + कर्म = दुष्कर्म

४) निः + पाप = निष्पाप

३) विसर्ग का र्:

यदि विसर्ग से पहले 'अ/आ' से भिन्न कोई स्वर आए और विसर्ग के बाद किसी स्वर, किसी वर्ग का तीसरा, चौथा, पाँचवाँ वर्ण या य, र, ल, व, ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का र् में परिवर्तन हो जाता है। जैसे-

१) दुः + उपयोग = दुरूपयोग

२) दुः + लभ = दुर्लभ

३) निः + आशा = निराशा

४) दुः + गुण = दुर्गण

५) निः + जन = निर्जन

६) निः + बल = निर्बल

७) निः + आमिष = निरामिष

८) आशीः + वाद = आशीर्वाद

४) 'अ', 'अः' के स्थान पर ओ:

यदि विसर्ग के पहले 'अ' स्वर और आगे 'अ' अथवा कोई सघोष व्यंजन (किसी वर्ग का तीसरा, चौथा, पाँचवाँ वर्ण) अथवा य, र, ल, व, ह में से कोई वर्ण हो तो 'अ' और विसर्ग (अः) के बदले 'ओ' हो जाता है। जैसे-

१) मनः + योग = मनोयोग

२) मनः + हर = मनोहर

३) तपः + बल = तपोबल

४) मनः + रंजन = मनोरंजन

५) यशः + दा = यशोदा

६) पयः + द = पयोद

५) विसर्ग का लोप और पूर्व स्वर दीर्घ:

i) यदि विसर्ग 'के' आगे 'र' व्यंजन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है और पहले का ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे -

१) निः + रोग = निरोग

२) निः + रज = नीरज

ii) यदि विसर्ग के पहले 'अ' या 'आ' स्वर हो और बाद में कोई भिन्न स्वर आए तो विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे -

१) अतः + एव = अतएव

iii) कुछ शब्दों में विसर्ग का 'स्' हो जाता है। जैसे -

१) नमः + कार = नमस्कार

२) भाः + कर = भास्कर

३) पुरः + कार = पुरस्कार

८.७ सारांश

प्रस्तुत इकाई में संधि का अध्ययन किया गया हैं | यहाँ संधि का अर्थ, उसका स्वरुप क्या है और उसके प्रमुख भेद कौनसे है उसे देखा हैं | यहाँ पर शब्द का निर्माण ध्वनियों के मेल से हो जाता हैं और मुख्य रूप से वर्णों के मेल या जोड़ को ही संधि कहा जाता हैं | उसका अध्ययन किया गया हैं |

८.८ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्र.१ संधि किसे कहते हैं? संधि के कितने भेद होते है? उनके नाम लिखिए।

प्र.२ संधि किसे कहते हैं? संधि के भेदों की सविस्तर चर्चा कीजिए।

प्र.३ संधि विच्छेद से क्या तात्पर्य है? संधि के कितने भेद होते है? व्यंजन तथा विसर्ग संधि के नियमों को उदाहरण सहित लिखिए।

प्र.४ संधि से आप क्या समझते हैं? स्वर संधि के कितने भेद है? उदाहरण सहित सविस्तर लिखिए।

८.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ सामान्य अर्थ में संधि का क्या अर्थ होता है?

उ. जोड़ या मेल।

प्र.२ दो निकट वर्णों के परस्पर मेल से जो विकार उत्पन्न होता है, उसे क्या कहते है?

उ. संधि कहते हैं।

प्र.३ संधि के कितने भेद होते हैं?

उ. तीन भेद होते हैं।

प्र.४ स्वर संधि के कितने भेद होते हैं?

उ. पाँच भेद होते हैं।

प्र.५ स्वरों के मेल से होने वाली संधि को क्या कहते हैं?

उ. स्वर संधि कहते हैं।

प्र.६ जब व्यंजन के बाद स्वर या व्यंजन के आने से जो परिवर्तन होता है, उसे कौन-सी संधि कहते हैं?

उ. व्यंजन संधि कहते हैं।

प्र.७ विसर्ग संधि किसे कहते हैं?

उ. किसी भी शब्द के अंत में लगे विसर्ग के बाद स्वर या व्यंजन आने पर विसर्ग में परिवर्तन होता है, उसे विसर्ग संधि कहते है?

प्र.८ 'योगाभ्यास' का संधि-विच्छेद किजिए।

उ. योगाभ्यास = योग + अभ्यास।

प्र.९ 'दुः + उपयोग' का संधि बनाए।

उ. दुः + उपयोग = दुरूपयोग।

८.१० संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा की रचना – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश – डॉ. महेंद्र कुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका – डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना – शशि शर्मा

*****

९

वाक्य रचना

इकाई की रूपरेखा

९.० इकाई का उद्देश्य

९.१ प्रस्तावना

९.२ वाक्य की परिभाषा

९.३ वाक्य के महत्वपूर्ण अंग

९.४ अर्थ के आधार पर वाक्य के प्रकार

९.५ रचना की दृष्टि से वाक्य के प्रकार

९.६ सारांश

९.७ संभावित प्रश्न

९.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

९.९ संदर्भ ग्रंथ

९.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी व्याकरण के निम्नलिखित मुद्दों से परिचित होंगे -

- वाक्य क्या है? उसके अंग कौन से होते है?
- वाक्य के भेदो से परिचित होगे।
- अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद स्पष्ट होंगे।
- रचना के आधार पर वाक्य के भेद स्पष्ट होंगे।

९.१ प्रस्तावना

व्याकरण वह विदया है जिसके द्वारा किसी भाषा को शुद्ध बोला, पढ़ा और शुद्ध लिखा जाता है। इसमें वाक्य रचना का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वाक्यों को शुद्ध रूप से लिखना और उसका अर्थ जानना आवश्यक है। ऐसे में कुछ नियमों का पालन करके हम शुद्ध वाक्य बना सकते हैं। वाक्य का अध्ययन हमें व्याकरण के कुछ नियमों से हमारा परिचय होगा।

९.२ वाक्य की परिभाषा

जब भी हमें अपने मन की बात दूसरों तक पहुँचानी होती है या किसी से बातचीत करनी होती है तो हम वाक्यों का सहारा लेकर ही बोलते है। यदयपि वाक्य विभिन्न शब्दों (पदों) के योग से बनता है और हर शब्द का अपना अलग–अलग अर्थ भी होता है, पर वाक्य में आए

सभी घटक परस्पर मिलकर एक पूरा विचार या संदेश प्रकट करते हैं। वाक्य छोटा हो या बड़ा किसी–न–किसी विचार या भाव को पूर्णत: व्यक्त करने की क्षमता रखता है। अत: "ऐसा सार्थक शब्द–समूह, जो व्यवस्थित हो तथा पूरा आशय प्रकट कर सके, वाक्य कहलाता है।"

भाषा की सबसे छोटी इकाई वर्ण हैं। वर्णों के सार्थक समूह से शब्द बनते हैं। केवल शब्दों के समूह से ही वाक्य नहीं बनते, बल्कि शब्दों का क्रमबद्ध होना भी आवश्यक होता है। जैसे– आकर खा गई घास गाय।

उपर्युक्त वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा है, क्योंकि वाक्य बनते समय क्रम को ध्यान में नहीं रखा गया। शब्द तो वाक्य के ठीक है, परन्तु शब्दों का क्रम ठीक नहीं हैं। जबकि शब्दों के सार्थक मेल होने पर ही वाक्य बनते हैं। इस प्रकार से– 'गाय आकर घास खा गई।' ही सही वाक्य हुआ, क्योंकि वाक्य में शब्द क्रमबद्ध है। हम कह सकते हैं कि – "शब्दों के सार्थक समूक को ही वाक्य कहते हैं।"

'वाक्य' में निम्नलिखित बातें होती हैं -

१) वाक्य की रचना शब्दों के योग से होती है।

२) वाक्य अपने आप में पूर्ण तथा स्वतंत्र होता है।

३) वाक्य किसी न किसी भाव या विचार को पूर्णत: प्रकट कर पाने में सक्षम होता है।

४) वाक्य में शब्दों का क्रमबद्ध हो ना जरूरी है।

५) प्राय: भाषा में एक से अधिक शब्द होते हैं, किन्तु बातचीत में प्राय: एक वाक्य एक शब्द के भी होते है, विशिष्ट संदर्भ में 'हाँ, 'जाओ', 'बैठो' 'नहीं' वाक्य ही है।

परिभाषा:

वाक्य की परिभाषा अत्यन्त विवादास्पद है। भारत के आचार्यों, दार्शनिकों और साहित्यकारों ने वाक्य की परिभाषा अलग–अलग दी है।

१) "ऐसा सार्थक शब्द–समूह, जो व्यवस्थित हो तथा पूरा आशय प्रकट करें, वाक्य कहलाता है।"

२) कामता प्रसाद गुरु के अनुसार–"एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द–समूह वाक्य कहलाता है।"

३) बद्रीनाथ कपूर के अनुसार "भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई है जिसके द्वारा कोई बात कही गई है।"

४) डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार "भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।"

५) आचार्य पंतजलि के अनुसार "पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द–समूह को वाक्य कहते है।"

९.३ वाक्य के महत्वपूर्ण अंग

वाक्य के दो अंग होते हैं -

१) उद्देश्य (subject)

२) विधेय (Predicate)

१) उद्देश्य:

वाक्य में जिसके संबंध में कुछ कहा जाये, उसे उद्देश्य कहा जाता है। उद्देश्य प्राय: कर्ता को कहा जाता है। जैसे-

(१) राधा गाना गाती है।

(२) माली पौधों को पानी दे रही है।

(३) बच्चे खेल रहे हैं।

इन वाक्यों में 'राधा', 'माली' और 'बच्चे' उद्देश्य हैं, क्योंकि उपर्युक्त वाक्यों में 'राधा', 'माली' तथा 'बच्चे' के बारे में बात की जा रही हैं।

उद्देश्य कभी स्वतंत्र होता है और कभी–कभी उसके साथ दूसरे शब्द भी जुड़े रहते है। उद्देश्य के अर्थ में विशेषता प्रकट करने की लिए को शब्द या वाक्यांश उसके साथ जोड़े जाते हैं, वे उद्देश्य–विस्तारक कहलाते है। जैसे:–

(१) काली गाय घास चरती है।

(२) पड़ोस में रहने वाले शर्मा जी विदेश चले गए।

(३) कमल का भाई चालाक है।

उपर्युक्त वाक्यों में 'गाय', 'शर्मा जी', 'भाई' उद्देश्य है तथा 'काली', 'पड़ोस में रहनेवाले' तथा 'कमल का' यह तीनों उद्देश्य विस्तारक हैं।

२) विधेय:

वाक्यों में उद्देश्य के विषय में जो कुछ भी कहा जाए उसे विधेय कहते हैं। विधेय प्राय: क्रिया होती है। जैसे–

(१) सीता गाना गाती है।

(२) मोहन बाजार जा रहा है।

इन वाक्यों में 'गाना गाती है।' तथा 'बाजार जा रहा है।' विधेय है। कुछ अन्य उदाहरण निम्न प्रकार हैं:

उद्देश्य	**विधेय**
शीला	गाना गा रही है।
महात्मा गांधी	हमारे प्रिय नेता थे।
हमारे प्रिय नेता राजीव गांधी	चुनाव में जीत गये हैं।

विधेय के अर्थ में विशेषता लाने वाले शब्द विधेय: विस्तारक कहलाते है। जैसे –

(१) घोड़ा तेज दौड़ रहा है।

(२) राघव खाकर सो जाएगा।

(३) विदेशियों ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

उपर्युक्त वाक्यों में 'दौड़ रहा है', तथा 'कर दिया' ये सभी विधेय हैं तथा 'तेज', 'खाकर' तथा 'आक्रमण' विधेय विस्तारक हैं।

९.४ अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद

वाक्य में कोई सूचना दी जा रही है, या नकारात्मकता का भाव है, प्रश्न पूछा जा रहा है या विस्मय प्रकट किया जा रहा है, काम करने का आदेश दिया जा रहा। या इच्छा प्रकट की जा रही हो या संकेत दिया जा रहा हो आदि का अर्थ बोध होता है।

अर्थ के आधार पर वाक्य के आठ भेद होते हैं:

१) विधानवाचक वाक्य

२) निषेधवाचक वाक्य

३) प्रश्नवाचक वाक्य

४) संदेहवाचक वाक्य

५) इच्छावाचक वाक्य

६) आज्ञावाचक वाक्य

७) संकेतवाचक वाक्य

८) विस्मयादिबोधक वाक्य

१) विधानवाचक वाक्य:

जिन वाक्यों के द्वारा क्रिया के होने या करने का बोध हो या इस प्रकार का सामान्य कथन हो, उसे विधानवाचक वाक्य कहा जाता है। जैसे–

(१) में कल शिमला जाऊँगा ।

(२) पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है।

(३) नदी में बाढ़ आई है।

विधानवाचक वाक्य को सकारात्मक वाक्य भी कहा जाता है क्योंकि इस वाक्यों में जो बात कहीं जाती है, उसे ज्यों का त्यों मान लिया जाता है।

२) निषेधवाचक वाक्य:

जिन वाक्यों में काम के न होने का पता चले, उन्हें निषेधवाचक वाक्य कहते हैं| जैसे –

(१) मैं मुम्बई नहीं जाऊँगा।

(२) मेले में कोई नहीं गया।

(३) आज शिक्षिका ने कक्षा में नहीं पढ़ाया |

३) प्रश्नवाचक वाक्य:

जिन वाक्यों में प्रश्न पूछा जाय और कुछ उत्तर पाने की जिज्ञासा रहती है, उसे प्रश्नवाचक वाक्य कहते है। इस प्रकार के वाक्यों में क्यों, क्या, कब, कहाँ, कौन, किसे आदि शब्द आते हैं और वाक्य के अंत में प्रश्नवाचक चिह्न (?) लगा होता है। जैसे–

(१) राधा कहाँ रहती है?

(२) तुम दिल्ली कब जाओगे?

(३) तुम्हारा नाम क्या है?

४) सन्देहवाचक वाक्य:

जिन वाक्यों में किसी क्रिया के पूर्ण होने में संदेह अथवा संभावना का बोध है, उन्हें संदेहवाचक वाक्य कहते हैं। इस प्रकार के वाक्यों में शायद, संभवत: जैसे शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है तथा वाक्य के अंत में 'होगा', 'होगी' 'होंगे' देखने को मिलते हैं। जैसे–

(१) शायद वह पास हो जाए।

(२) अब तक वह चला गया होगा।

(३) रमा खाना पका चुकी होगी।

५) इच्छावाचक वाक्य:

जिन वाक्यों द्वारा वक्त की आशा, इच्छा, कामना, आशीर्वाद का बोध हो उन्हें इच्छावाचक वाक्य कहते हैं। जैसे–

(१) ईश्वर करें, आप खूब उन्नति करें।

(२) भगवान करे सब कुशल हो।

(३) भगवान तुम्हें दीर्घायु करें।

६) आज्ञावाचक वाक्य:

जिन वाक्यों में आज्ञा या अनुमति लेने–देने का भाव प्रकट होता है, उसे आज्ञावाचक वाक्य कहते हैं। इस प्रकार के वाक्यों में आज्ञा, अनुमति, निवेदन, आदेश का भाव निहित रहता है। जैसे:–

(१) आप अन्दर आ सकते है। (अनुमति)

(२) कृपया मुझे एक गिलास पानी दीजिए। (निवेदन)

(३) शांति से बैठकर पढ़ो। (आदेश)

७) संकेतवाचक वाक्य:

जिन वाक्यों से एक किया के दूसरी क्रिया पर निर्भर होने का बोध हो, उन्हें संकेत–वाचक वाक्य कहते हैं। इस प्रकार के वाक्यों में काम पूरा होने के लिए शर्त–सी लगी होती है। जैसे–

(१) यदि वर्षा रूकती तो मैं घर जाता।

(२) अगर परिश्रम करोगे, तो अवश्य सफल होगे।

(३) नौकरी मिले तो घर का खर्च चले।

८) विस्मयादिवाचक वाक्य:

जिन वाक्यों में हर्ष, शोक, विस्मय, घृणा, आश्चर्य, दुख आदि भाव व्यक्त हों अथवा वक्ता अपने विचार या भाव प्रकट करने के लिए अचानक बोल उठता है, उन्हें विस्मयादिबोधक कहते हैं। जैसे–

(१) अरे! यह क्या कह दिया ?

(२) अहा! कितना सुंदर मौसम है ।

(३) छि: छि: ! यह गली कितनी गंदी है ।

(४) वाह! सुरेश ने तो कमाल कर दिया ।

९.५ रचना दृष्टि से वाक्य के प्रकार

रचना के अनुसार वाक्य के मुख्य तीन भेद हैं -

१) सरल या साधारण वाक्य

२) संयुक्त या यौगिक वाक्य

३) मिश्रित या जटिल वाक्य

१) सरल या साधारण वाक्य:

जिस वाक्य में एक ही उद्देश्य तथा एक ही विधेय होता है, उसे साधारण या सरल वाक्य कहते हैं।

(१) सुभाष पढ़ा रहा है।

(२) राम बाजार जा रहा है।

(३) वह पुस्तक पढ़ रहा है।

इन वाक्यों में 'सुभाष', 'राम' तथा 'वह' उद्देश्य या कर्ता है तथा 'पढ़ा रहा है', 'जा रहा है' तथा 'पढ़ रहा है' क्रिया है। अत: इन वाक्यों में एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय है, इसलिए ये सरल वाक्य हैं।

सरल वाक्य में कर्ता और क्रिया के अलावा कर्म तथा उनके पूरक भी सम्मिलित किए जा सकते हैं।

१) रमेश खेला (कर्ता–क्रिया)

२) रमेश खेल रहा है (कर्ता–क्रिया विस्तार)

३) दिनेश का बेटा रमेश खेल रहा है। (विस्तारकर्ता–क्रिया विस्तार)

४) रमेश फुटबाल खेल रहा है। (कर्ता कर्म–क्रिया विस्तार)

५) रमेश ने राहुल को पुस्तक दी। (कर्ता–कर्म–कर्म क्रिया)

६) रमेश ने अपने प्रिय मित्र को कहानी की पुस्तक दी। (कर्ता–कर्म का विस्तार, कर्म–कर्म का विस्तार–कर्म–क्रिया |)

२) संयुक्त या यौगिक वाक्य:

जिस वाक्य में दो या दो से अधिक वाक्य समुच्चबोधक की सहायता से जुड़े हो, उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं, उसे संयुक्त या यौगिक वाक्य कहते हैं। संयोजक द्वारा जुड़े रहने पर भी प्रत्येक वाक्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और एक–दूसरे पर आश्रित नहीं रहता। अत: संयुक्त वाक्य में प्रयुक्त सरल वाक्यों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से भी हो सकता है। जैसे -

(१) मैं लिख रहा हूँ और तुम पढ़ रहे हो।

(२) ईशा बाजार गई और जल्दी से लौट आई।

(३) उसने बहुत मेहनत की थी इसलिए वह कक्षा में प्रथम आया।

(४) आप पहले आराम करेंगे या आपके लिए खाना ले आऊँ।

संयुक्त वाक्य में 'किंतु' 'और', 'या', 'इसलिए' आदि अव्यय शब्दों का प्रयोग होता है।

३) मिश्रित या जटिल वाक्य:

जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य के साथ एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य जुड़े हों, तो उसे 'जटिल या मिश्र वाक्य' कहा जाता हैं। संयुक्त वाक्य में प्रयुक्त उपवाक्यों में समानता का संबंध नहीं होता वरन आश्रय–आश्रित का संबंध होता है। इसमें एक प्रधान उपवाक्य होता है, जिसमें मुख्य कथन होता है और जिसका विस्तार दूसरा उपवाक्य करता है। इनमें से कोई भी उपवाक्य स्वतंत्र नहीं होता है। जैसे–

(१) राम ने कहा कि वह कल दिल्ली जाएगा।

(२) चूँकि आज मूसलाधार वर्षा हुई अत: बाढ़ आ गई।

(३) जब वह मुंबई गया तब उसने वहाँ नया व्यापार शुरू किया।

(४) जिन छात्रों ने परिश्रम किया वे उत्तीर्ण हो गए।

इन वाक्यों में 'राम ने कहा', चूँकि आज मूसलाधार वर्षा हुई', 'जब वह मुंबई गया' तथा 'जिन छात्रों ने परिश्रम किया' प्रधान उपवाक्य है और 'वह कल दिल्ली जाएगा', 'बाढ़ आ गई', 'नया व्यापार शुरू किया' तथा 'वे उत्तीर्ण हो गए' आश्रित उपवाक्य है।

९.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में वाक्य रचना में वाक्य की परिभाषा, अर्थ और रचना की दृष्टि से वाक्य के प्रकारों का अध्ययन किया गया हैं | इसमे एक से अधिक पद होते है जिसे शब्द भी कहा जाता हैं | कभी-कभी गौण शब्दों को छोड़कर केवल उस एक शब्द या कुछ शब्दों के वाक्य भी मिलते है जो कि विषय से सीधे संबधित होते हैं | और उसके आधार पर पुरे वाक्य की कल्पना श्रोता या पाठक सहज कर लेता हैं | इस तरह से अध्याय के अंतर्गत देखा गया हैं |

९.७ संभावित प्रश्न

प्र.१ वाक्य की परिभाषा देते हुए इसके अंगों पर अपने विचार लिखिए।

प्र.२ अर्थ के आधार पर वाक्य के कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।

प्र.३ रचना के अनुसार वाक्य के भेदों का वर्णन कीजिए।

९.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ सार्थक शब्दों के क्रमबद्ध समूह को कहते है?

उ. वाक्य।

प्र.२ वाक्य के कितने अंग होते हैं?

उ. दो अंग होते हैं।

प्र.३ वाक्य में जिसके संबंध में कुछ कहा जाता है, उसे क्या कहते हैं?

उ. उद्देश्य कहते हैं।

प्र.४ अर्थ के आधार पर वाक्य के कितने भेद होते हैं?

उ. आठ भेद होते हैं।

प्र.५ रचना के आधार पर वाक्य के कितने भेद हैं?

उ. तीन भेद |

प्र.६ जिन वाक्यों में क्रिया के न होने का बोध होता है इसे क्या कहते हैं?

उ. निषेधवाचक वाक्य।

प्र.७ जिन वाक्यों से एक क्रिया के दूसरी क्रिया पर निर्भर होने का बोध हो, उसे कौन सा वाक्य कहते है?

उ. संकेतवाचक वाक्य |

प्र.८ साधारण वाक्य में कितने उद्देश्य और विधेय होतें है?

उ. एक उद्देश्य और एक विधेय होता है।

प्र.९ संयुक्त वाक्य आपस में किसके द्वारा जुड़े रहते है?

उ. समुच्चबोधक को सहायता से जुड़े होते हैं।

प्र.१० मिश्रित वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य होता है तो दूसरा उपवाक्य क्या होता है?

उ. दूसरा उपवाक्य आश्रित वाक्य होता है।

९.९ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा की रचना – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश – डॉ. महेंद्र कुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका – डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना – शशि शर्मा

*****

१०

हिन्दी वाक्य रचना में अध्याहार और पदक्रम संबंधी सामान्य नियम

इकाई की रूपरेखा

१०.० इकाई का उद्देश्य

१०.१ प्रस्तावना

१०.२ अध्याहार

१०.३ पदों का क्रम एवं नियम

१०.४ पदों का अन्वय एवं नियम

१०.५ सारांश

१०.६ संभावित प्रश्न

१०.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१०.८ संदर्भ ग्रंथ

१०.० इकाई का उद्देश्य

छात्र इस इकाई के माध्यम से सही वाक्य–रचना करना सीखेंगे।

- अध्याहार किस तरह से होता हैं उसे जान सकेंगे |
- छात्र वाक्य में क्रम के आधार को समझ पायेंगे। पहले कर्ता, फिर कर्म और फिर अन्त में क्रिया आती है।
- छात्र पदों के अन्वय के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस प्रकार छात्र शुद्ध वाक्य लिखनें की क्षमता प्राप्त करेंगे।

१०.१ प्रस्तावना

छात्र वाक्य की रचना से परिचित है। किसी विचार का पूर्ण और स्पष्ट रूप से प्रकट करनेवाला व्यवस्थित तथा सार्थक शब्द समूह को 'वाक्य' कहा जाता है। 'शब्द' स्वतन्त्र होते हैं जब यही शब्द वाक्य में प्रयोग होते है तो पद बन जाते हैं। इन्हीं पदों के क्रम का आधार होता क्या है? पदों का अन्वय कैसे होता है। इन्हीं सबके बारे में हम यहाँ पर पढ़ेंगे।

१०.२ अध्याहार

अध्याहार का अर्थ हैं वाक्य का अर्थ करते समय कुछ ऐसे शब्दों को लाना जिन्हें वाक्य बनाते समय छोड़ा दिया गया हैं क्यौकी उनके न रहने पर भी उस प्रसंग वाक्य को समझने

में बाधा नहीं पड़ती | 'राम जा रहा है और मोहन भी', वाक्य मूलतः है 'राम जा रहा है और मोहन भी जा रहा हैं |' परंतु अंतिम वाक्य 'जा रहा है' का अध्याहार करके वाक्य को यह संक्षिप्त रूप दे दिया हैं |

अध्याहार कई प्रकार का होता है –

(क) कर्त्ता का अध्याहार – जैसे

'सुना है राजा साहब के घर चोरी हो गई हैं |'

(ख) क्रिया का अध्याहार – जैसे

'राम जा रहा है और मोहन |' यहाँ 'जा रहा है' का अध्याहार हैं |

(ग) वाक्यांश का अध्याहार – जैसे

१. प्रश्नोत्तर में : प्रश्न – तुम्हारा नाम क्या हैं?,

उत्तर – 'राम' (मेरा नाम' तथा 'हैं' का अध्याहार) |

२. अव्यय : वह ऐसा सीधा है जैसे गाय | ('सीधी होती हैं' का अध्याहार) |

१०.३ पदों का क्रम एवं नियम

अर्थ तथा परस्पर संबन्ध के विचार में शब्दों को उचित स्थान पर रखने को पद क्रम कहते हैं। हिन्दी के वाक्य में पदक्रम के निम्नलिखित नियम हैं -

१) सामान्य वाक्य में पहले कर्ता और अंत में क्रिया होती है। जैसे– राम गया। रामा सोती है। इन वाक्यों में राम, रामा कर्ता (पहले शब्द) है और गया, सोती है क्रिया (अंतिम शब्द) है।

२) क्रिया का कर्म या उसका पूरक क्रिया से पहले आता है तथा क्रिया कर्ता के बाद। जैसे–

(१) राम ने सेब खाया।

(२) पिता ने पुत्र को पैसे दिए।

इन वाक्यों में 'सेब', 'पुत्र' तथा 'पैसे' कर्म हैं। 'खाया' और 'दिए' क्रिया तथा राम और पिता कर्ता।

३) यदि दो कर्म हों तो गौण कर्म पहले तथा मुख्य कर्म बाद में आता है। जैसे–

(१) सीता ने रमेश को पुस्तक दी।

(२) पिता ने पुत्र को पैसे दिए।

इसमें 'रमेश' और 'पुत्र' गौण कर्म हैं तथा 'पुस्तक' और 'पैसे' मुख्य कर्म है।

४) सम्बोधन तथा विस्मयादिबोधक शब्द प्राय: वाक्य के प्रारंभ में आता है। जैसे– वत्स! चिरंजीवी हो + ओ।

५) कर्ता, कर्म तथा क्रिया के विशेषक (विशेषण या क्रियाविशेषण) अपने–अपने विशेष्य से पहले आता हैं। जैसे– मेधावी छात्र मन लगाकर पढ़ रहा है।

इस वाक्य में मेधावी (विशेषण) तथा मन लगाकर (क्रियाविशेषण) क्रमश: अपने–अपने विशेष्य छात्र (संज्ञा) तथा क्रिया (पढ़ रहा है) से पहले आए है।

६) विशेषण सर्वनाम के पहले नहीं आ सकता, वह सर्वनाम के बाद ही आएगा। जैसे –

(१) वह अच्छा है।

(२) यह काला कपड़ा है।

यहाँ सर्वनाम 'वह' और 'यह' के बाद ही विशेषण 'काला' और 'अच्छा' आए हैं।

७) स्थानवाचक या कालवाचक क्रियाविशेषण कर्ता के पहले या ठीक पीछे रखे जाते हैं। जैसे–

(१) आज मुझे जाना है।

(२) तुम कल आ जाना।

इन वाक्यों में कालवाचक क्रियाविशेषण 'आज' और 'कल' अपने कर्ता 'मुझे' और 'तुम' के क्रमश: पहले तथा ठीक बाद में आए हैं।

८) निषेधार्थक क्रियाविशेषण क्रिया से पहले आते हैं। जैसे–

(१) तुम वहाँ मत जाओ।

(२) मुझे यह काम नहीं करना।

इन वाक्यों में निषेधार्थक क्रियाविशेषण 'मत' तथा 'नहीं' क्रमश: अपनी क्रिया 'जाओ' तथा 'करना' से पहले आए हैं।

९) प्रश्नवाचक सर्वनाम या क्रियाविशेषण प्राय: क्रिया से पहले आते हैं। जैसे–

(१) आप कौन हो?

(२) तुम्हारा घर कहाँ हैं?

इन वाक्यों में प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' तथा क्रियाविशेषण 'कहाँ' क्रिया से पहले आए हैं। किंतु जिस 'क्या' का उत्तर 'हाँ' या 'ना' में हो वह वाक्य के प्रारंभ में आते हैं। जैसे–

(१) क्या तुम जाओगे।

(२) क्या तुम्हें खाना खाना है?

१०) प्रश्नवाचक या कोई अन्य सर्वनाम जब विशेषण के रूप में प्रयुक्त हो, तो संज्ञा से पहले आएगा। जैसे–

(१) यहाँ कितनी किताबें है?

(२) कौन आदमी आया है?

इन वाक्यों में 'यहाँ' तथा 'कौन' प्रश्नवाचक सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होकर क्रमश: 'किताबें' तथा आदमी (संज्ञा) से पहले आए है।

११) संबंधबोधक अव्यय तथा परसर्ग संज्ञा और सर्वनाम के बाद आते हैं। जैसे–

(१) राम को जाना है।

(२) वह बाज़ार की ओर घूमने गया है।

उपयुक्त वाक्यों में 'को' 'की ओर', राम तथा वह के बाद आए हैं।

१२) साधारण तथा, मुख्यत:, केवल, प्रधानत: आदि अनेक शब्द ठीक उनके पहले प्रयुक्त होते हैं। जिनके विषय में निश्चय प्रकट किया जाता है। जैसे–

(१) केवल राम ही खेल रहा है।

१३) पुर्वकालिक 'कर' धातु के 'पीछे' जुड़ता है। जैसे– छोड़+ कर = छोड़कर।

इसके अलावा पुर्वकालिक क्रिया, मुख्य क्रिया से पहले आती है। जैसे–

(१) वह खाकर सो गया।

(२) वह आकर पढ़ेगा।

इन वाक्यों में 'खाकर' तथा 'आकर' (पूर्वकालिक) 'सो गया' तथा 'पढ़ेगा' से पहले आए हैं।

१४) भी, तो, ही, भर तक आदि अव्यय उन्हीं शब्दों के पीछे लगाते हैं, जिनके विषय में वे निश्चय प्रकट करते हैं। जैसे–

(१) मैं तो (भी, ही) घर गया था।

(२) मैं घर भी (ही) गया था।

इन दोनों वाक्यों में अव्यय 'तों' 'भी' तथा 'ही' क्रमश: 'मैं' और 'घर' के विषय में निश्चय प्रकट कर रहे हैं, इसलिए उनके पीछे लगे हुए हैं।

१५) यदि....... तो, जब....... तब, जहाँ...... वहाँ, ज्योंहि...... त्योंह आदि नित्य संबंधी अव्ययों में प्रथम प्रधान वाक्य के पहले तथा दूसरा आश्रित वाक्य के पहले लगता है। जैसे –

(१) जहाँ चाहते हो, वहाँ जाओ।

(२) जब आप आएँगे, तब वह जा चुका होगा।

इन वाक्यों में 'जहाँ' और जब प्रथम प्रधान वाक्य के पहले तथा 'वहाँ' और 'तब' दूसरे आश्रित उपवाक्य के पहले लगे हैं।

१६) समुच्चबोधक अव्यय दो शब्दों या वाक्यों के बीच में आता है। तीन समान शब्द या वाक्य हों तो 'और' अंतिम से पहले आता है। जैसे–

(१) दिनेश तो जा रहा है, लेकिन रमेश नहीं।

(२) सीता, गीता और रमा तीनों ही आएँगी।

पहले वाक्य में समुच्चयबोधक अव्यय 'लेकिन' दो वाक्यों के बीच में आया है तथा दूसरे वाक्य में समुच्चयबोधक अव्यय 'और' तीन शब्द होने के कारण से अंतिम से पहले आया है।

१७) वाक्य में विविध अंगों में तर्क संगत निकटता होनी चाहिए। जैसे– एक पानी का गिलास लाओ। इस वाक्य में 'एक पानी' निरर्थक है। 'पानी का एक गिलास लाओ' सार्थक वाक्य है।

१८) योजक अव्यय जिन शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ते हैं उनके मध्य में आते है। जैसे– राधा और सीता, खेलो या पढ़ो।

१९) संबंध के पश्चात् संबंधी, विशेषण के बाद विशेष्य, क्रिया – विशेषण के बाद क्रिया का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

(१) यह लीना की गुड़िया है।

(२) तुमने मुझे व्यवहार कुशल बनाया।

१०.४ पदों का अन्वय एवं नियम

अन्वय का अर्थ है 'मेल'। वाक्य में पुरुष, वचन, लिंग, कारक आदि आने पर पदों में परस्पर मेल होना चाहिए। वाक्य की शुद्धता के लिए अन्वय का ज्ञान होना आवश्यक है। अत: शुद्ध वाक्य की रचना के लिए अन्वय का ज्ञान होना अति आवश्यक है। अन्वय के कुछ विशेष नियम यहाँ दिए जा रहे हैं –

१) कर्ता, कर्म और क्रिया का अन्वय:

i) यदि कर्ता विभक्ति चिह्न या परसर्ग न हो, तो क्रिया, लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होगा। जैसे–

(१) राधा गाना गाती है।

(२) शीला खाना बनाती है।

ii) यदि कर्ता के साथ परसर्ग हो, तो क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होगा। जैसे–

(१) राम ने पुस्तक पढ़ी।

(२) रमा ने भोजन पकाया।

iii) यदि कर्ता और कर्म दोनों के साथ परसर्ग हो, तो क्रिया सदा पुल्लिंग, अन्य पुरुष, एक वचन में रहती है। जैसे–

(१) पुलिस ने चोर को पीटा।

iv) एक ही तरह का अर्थ देने वाले अनेक कर्ता एकवचन में और पर सर्ग रहित हों, तो क्रिया एकवचन में होगी। जैसे–

(१) आज मैंने नास्ते में पूड़ी, सब्जी, खीर, अचार और पापड़ खाया।

v) यदि एक से अधिक भिन्न कर्ता लिंगों में हो, तो क्रिया अंतिम कर्ता के लिंग के अनुसार होगी। जैसे–

(१) उसके पास एक पायजामा और दो कमीजें थीं।

vi) यदि एक से अधिक भिन्न–भिन्न कर्ता, परसर्ग रहित हों, तो क्रिया बहुवचन में होगी। जैसे–

(१) सीता और गीता पढ़ रही थीं।

(२) रमेश और मोहन पढ़ रहे हैं।

vii) सम्मान प्रकट करने के लिए एक व्यक्ति के लिए भी कर्ता में बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

(१) मेरे पिताजी कार्यालय जाते हैं।

viii) वाक्य में अनेक क्रियाओं का कर्ता एक ही बार प्रयुक्त होता है। जैसे–

(१) रमन सवेरे उठता है, प्रार्थना करता है, नाश्ता करता है तथा विद्यालय जाता है।

ix) उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष एवं तीनों पुरुषों के मेल में क्रिया उत्तम पुरुष में प्रयुक्त होती है। जैसे–

(१) हम, तुम आए सीमा इसी विद्यालय में प्रवेश लेंगे।

२) संबंध और संबंधी का अन्व्यय:

i) का, के, की संबंधवाची विशेषण परसर्ग हैं। इनका लिंग, वचन और कारकीय रूप वही होता है, जो उत्तर पद (संबंधी) का होता है। जैसे–

(१) शीला की घड़ी |

(२) राजू का रूमाल |

(३) रमा के कपड़े |

ii) यदि संबंधी पद अनेक हों, तो संबंधवाची विशेषण परसर्ग पहले संबंधी के अनुसार होता है। जैसे–

(१) शीला के बहन और भाई जा रहे थे।

iii) ऐसे में परसर्गो को दोहराया भी जा सकता है। जैसे–

(१) शीला की बहन और भाई जा रहे थे।

३) संज्ञा और सर्वनाम का अन्वय:

i) सर्वनाम का वचन और पुरुष उस संज्ञा के अनुरूप होना चाहिए, जिसके स्थान पर उसका प्रयोग हो रहा है। जैसे–

(१) राधा ने कहा कि वह अवश्य आएगी।

(२) अध्यापक आए तो उनके हाथ में पुस्तकें थी।

ii) हम, तुम, आप, वे, ये आदि का अर्थ की दृष्टि से एक वचन के लिए भी प्रयोग होता है, किंतु इनका रूप बहुवचन ही रहता है। जैसे–

(१) आप कहाँ जा रहे हो।

४) विशेषण और विशेष्य का अन्व्यय:

i) विशेषण का लिंग और वचन, विशेष्य के अनुसार होता है। जैसे –

अच्छी साड़ी, छोटा बच्चा, काला घोड़ा, काली गाय, काले घोड़े आदि।

ii) यदि अनेक विशेष्यों का एक विशेषण हो, तो उस विशेषण के लिंग, वचन और कारकीय रूप तुरंत बाद में आने वाले विशेष्य के अनुसार होंगे। जैसे –

(१) पुराने पलंग और चारपाई बेच दी।

(२) अच्छी कहानियाँ और उपन्यास मैंने पढ़ें।

(३) अच्छे उपन्यास और कहानियां मैंने पढ़ीं।

iii) यदि एक विशेष्य के अनेक विशेषण हों, तो वे सभी विशेष्य के अनुसार होंगे। जैसे –

(१) सस्ती और अच्छी किताबें।

(२) गंदे और मैले–कुचैले कपड़े।

१०.५ सारांश

प्रस्तुत इकाई में वाक्य रचना में अध्याहार और पदक्रम संबंधी सामान्य नियमों को देखा हैं | इसमें 'पदक्रम' का अर्थ 'वाक्य में पदों के रखे जाने का क्रम |' 'पद' को 'शब्द' कहने के कारण कुछ लोग 'पदक्रम' को 'शब्द्क्रम' भी कहते है | हर भाषा के वाक्य में पदों या शब्दों के अपने-अपने क्रम होते है | इसे विस्तार से देखा हैं |

१०.६ संभावित प्रश्न

प्र.१ अन्वय से क्या तात्पर्य है? अन्वय के प्रमुख नियमों पर प्रकाश डालिए।

प्र.२ पद से क्या तात्पर्य है? पदों के क्रम एवं नियम को स्पष्ट कीजिए।

प्र.३ कर्ता, कर्म और क्रिया के अन्वय पर प्रकाश डालिए।

१०.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ वाक्य में क्रम का आधार क्या है?

उ. पहले कर्ता, फिर कर्म और अन्त में क्रिया आती है।

प्र.२ पद से क्या समझते हैं?

उ. जब कोई शब्द व्याकरणिक नियम के अनुसार वाक्य में प्रयोग होता है तो पद कहलाता है।

प्र.३ अन्वय का अर्थ क्या है।

उ. मेल है।

प्र.४ यदि दो कर्म हो तो गौण कर्म वाक्य में कहाँ आता है।

उ. वाक्य में गौण कर्म पहले आता है।

प्र.५ वाक्य में मुख्य कर्म कहाँ आता है?

उ. वाक्य में मुख्य कर्म बाद में आता है या कह सकते है क्रिया के पहले आता है।

प्र.६ प्रश्नवाचक सर्वनाम या क्रियाविशेषण प्राय: कहाँ आते है?

उ. क्रिया के पहले।

प्र.७ वाक्य में विशेषण किसके पहले आते है?

उ. अपने विशेष्य के।

प्र.८ विशेषण का लिंग और वचन किसके अनुसार होता है?

उ. अपने विशेष्य के अनुसार |

प्र.९ संबोधन शब्द प्राय: वाक्य में कहाँ आते हैं?

उ. आरंभ में आते हैं।

प्र.१० 'शीला पुस्तक पढ़ती है।' इसमें कर्म कौन–सा है?

उ. पुस्तक

१०.८ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा की रचना – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश – डॉ. महेंद्र कुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका – डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना – शशि शर्मा

*****

११

समास :अर्थ, स्वरूप तथा प्रमुख क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

११.० इकाई का उद्देश्य

११.१ प्रस्तावना

११.२ समास अर्थ, स्वरूप

११.३ समास के प्रमुख भेद

११.४ विभिन्न समासों में अंतर

११.५ संधि और समास में अंतर

११.६ सारांश

११.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

११.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

११.९ संदर्भ पुस्तके

११.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से छात्र निम्नलिखित बिंदुओं का अध्ययन करेंगे |

- समास तथा समस्तपद के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- छात्र समास विग्रह करना सीख सकेंगे।
- छात्र समास के प्रमुख भेदों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छात्र विभिन्न समासों के अंतर को समझकर उनके अलग-अलग रूपों को जान सकेंगे।
- साथ ही छात्र संधि और समाज के अंतर को भी अच्छे प्रकार से समझ सकेंगे।

११.१ प्रस्तावना

हिंदी की रूप रचना के अन्तर्गत हम उपसर्ग, प्रत्यय और समास के बारे में पढ़ते हैं। समास में परस्पर संबंध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर नया शब्द बनाने की प्रक्रिया चलती है। यह प्रक्रिया ही समास कहलाती है। दूसरे अर्थों में कह सकते है कि दो शब्दों के संक्षेपण प्रक्रिया ही समास है। समास के छह भेदों से परिचित होंगे। समास विग्रह करना सीख पायेंगे। इस इकाई में समास की समस्त जानकारी पाकर छात्र ज्ञान की वृद्धि कर सकेंगे।

११.२ समास अर्थ और स्वरूप

परिभाषा:

“परस्पर संबंध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर जब नया सार्थक शब्द बनाया जाता है तो, उस मेल को समास कहते है।”

समास का तात्पर्य है, संक्षेप अर्थात दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर एक करना। संस्कृत धातु ‘अस्’ में सम् उपसर्ग जोड़कर समास शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है समाहार या मिलाप। इस प्रकार हम पाते है की वास्तव में समास का अर्थ संक्षेपीकरण हुआ। जैसे - 'हवन के लिए सामग्री' में शेष सभी शब्दों या पदों का लोप करके 'हवन सामग्री' नया पद निर्मित कर लिया जाता है। उसी प्रकार चंद्र के समान मुख को हम 'चंद्रमुख' नया शब्द निर्मित होता है।

समास रचना में दो पद होते है:

१) पूर्वपद: पहले पद को पूर्वपद कहते हैं।

२) उत्तर पद: दूसरे पद को उत्तर पद कहते हैं।

इन दोनों पदों से बना नया शब्द 'समस्त पद' कहलाता है।

पूर्व पद + उत्तर पद = समस्तपद

१) राजा + का पुत्र = राजपुत्र

२) घोड़ा + सवार (घोड़े पर सवार) = घुड़ सवार

३) दश + आनन (हैं जिसके) = दशानन

समास विग्रह:

जब समस्त के सभी पद अलग-अलग किए जाते है, तब इस प्रक्रिया को समास विग्रह कहते हैं। जैसे:

१) ‘सीता-राम’, इस समस्तपद का विग्रह होगा - सीता और राम।

२) ‘माखनचोर’ समस्तपद का विग्रह होगा - माखन को चुराने वाला’।

११.३ समास के प्रमुख भेद

समास के छह प्रमुख भेद होते हैं जो निम्न हैं:

१) तत्पुरुष समास

२) कर्मधारय समास

३) द्विगु समास

४) द्वंवदव समास

५) अव्ययीभाव समास

६) बहुव्रीहि समास

१) तत्पुरुष समास:

समस्त पद बनाते समय बीच की विभक्तियों का लोप हो जाता है। जैसे-

१) यज्ञशाला का विग्रह है: यज्ञ के लिए शाला।

२) सुखप्राप्त का विग्रह है: सुख को प्राप्त।

तत्पुरुष समास के निम्मलिखित भेद हैं:

i) कर्म तत्पुरुष:

जहां कर्म कारक की विभक्ति 'को' का लोप हो। जैसे:-

समस्तपद	**विग्रह**
यशप्राप्त	यश को प्राप्त
स्वर्गगत	स्वर्ग को आगत
परलोगमन	परलोक को गमन
ग्रामगत	ग्राम को गत
शरणागत	शरण को आगत
जेब कतरा	जेब को कतरनेवाला।

ii) करण तत्पुरुष:

जहाँ करण कारक की विभक्ति ' से' का लोप हो। जैसे-

समस्तपद	**विग्रह**
तुलसीकृत	हस्त से लिखित
हस्तलिखित	स्वर्ग को आगत
रेखांकित	रेखा से अंकित
भुखमरा	भूख से मरा

सुररचित	सूर द्वारा रचित
प्रेमातुर	प्रेम से आतुर
अकाल पीड़ित	अकाल से पीड़ित
दर्याद्र	दया से आर्द्र

iii) संप्रदायन तत्पुरुष:

जहाँ संप्रदायन कारक की विभक्ति 'के लिए' का लोप हो। जैसे-

समस्तपद	**विग्रह**
विद्यालय	विद्या के लिए आलम
युद्धभूमि	युद्ध के लिए भूमि
रसोईघर	रसोइ के लिए घर
डाकगाडी	डाक के लिए गाड़ी
मार्गव्य	मार्ग के लिए व्यय
सत्याग्रह	सत्य के लिए आग्रह
देशार्पण	देश के लिए अर्पण
देशभक्ति	देश के लिए भक्ति

iv) अपादान तत्पुरुष:

जहाँ अपादान कारक की विभक्ति ‘से’ का लोप है। जैसे–

समस्तपद	**विग्रह**
धन हीन	धन से हीन
रोग मुक्त	रोग से मुक्त
विद्या हीन	विदया से हीन
जन्मांध	जन्म से अंधा
पदच्युत	पद से च्युत
धर्माविमुख	धर्म से विमुख

v) संबंध तत्पुरुष:

जहाँ संबंध कारक की विभक्ति 'का', 'की', 'के', 'का' लोप हो। जैसे:

समस्तपद	**विग्रह**
देवदास	देव का दास
आज्ञानुसार	आज्ञा के अनुसार
परनिंदा	पर की निंदा
विद्यासागर	विद्या का सागर
प्रसंगानुसार	प्रसंग के अनुसार
जीवनसाथी	जीवन का साथी
लखपति	लाखों का पति
देशवासी	देश का वासी

vi) अधिकरण तत्पुरुष:

जहाँ अधिकरण कारक की विभक्ति 'में', 'पर' का लोप हो। जैसे:

समस्तपद	**विग्रह**
युद्धनिपुण	युद्ध में निपुण
ग्रामवासी	ग्राम में वासी
घुड़सवार	घोड़े पर सवार
सिरदर्द	सिर में दर्द
पुरुषोत्तम	पुरूषों में उत्तम
आपबीती	आप पर बीती
कुलश्रेष्ठ	कुल में श्रेष्ठ

vii) नत्र समास:

जहाँ निषेध के अर्थ में 'न', 'अ' या अन का प्रयोग हो। जैसे:

समस्तपद	**विग्रह**
अन्याय	न न्याय

असफल	न सफल
अनपढ़	न पढ़ा लिखा
नास्तिक	न आस्तिक
अपठित	न पठित
अनिच्छा	न इच्छा
अनंत	न अंत
अनहोनी	न होनी

२) कर्मधारय समास:

जिसका पहला पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य हो या एक पद उपमान तथा दूसरा पद उपमेय हो तो उसे 'कर्मधारण समास' कहते हैं।

i) विशेषण – विशेष्य:

समस्तपद	**विग्रह**
नीलकमल	नीला है जो कमल
पुरुषोत्तम	पुरूषों में है जो उत्तम
महाराज	महान है जो राजा
अधपका	आधा है जो पका
प्रधानाध्यपक	प्रधान है को अध्यापक
का पुरूष	कायर है जो पुरुष

ii) उपमान – उपमेय:

समस्तपद	**विग्रह**
चंद्रमुख	चंद्र के समान मुख
स्त्रीधन	स्त्री रूपी धन
कर कमल	कर रूपी कमल
मृगलोचन	मृग के समान लोचन
भुजदंड	दंड के समान भुजा
देहलता	देह रूपीलता

विशेष:

१) **नील गाय:** नीली है जो गाय | यहाँ 'नीली' विशेषण और 'गाय' विशेष्य है।

२) **कमलनयन:** यहाँ 'नयन' की तुलना 'कमल' से की गइ है। यहाँ 'नयन' उपमेय (जिसकी तुलना की जाय) तथा 'कमल' उपमान (जिससे तुलना की जाए) है।

३) कर्मधारय समास में उपमेय–उपमान प्रयुक्त समस्तपदों का विग्रह करते समय 'रूपी, समान, जो' आदि तुलनात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

३) द्विगु समास:

जिस शब्द का पहला पद संख्यावाचक विशेषण होता है और किसी समूह विशेष का बोध कराता है जैसे:–

समस्तपद	**विग्रह**
पंचतत्व	पांच तत्वों का समूह
चौराहा	चार राहों का समाहार
त्रिभुज	तीन भुजाओं का समाहार
नवरात्र	नौ रात्रियों का समाहार
सप्ताह	सात दिनों का समूह
सतसई	सात सौं (दोहों) का समाहार
अठन्नी	आठ आनों का समूह
तिरंगा	तीन रंगों का समाहार

४) द्वंद्व समास:

जिस समस्तपद में दोनों पद प्रधान हो । तथा विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच 'और' 'या', 'अथवा' जैसे योजक शब्दों का प्रयोग हो तो, उसे 'द्वंद्व समास' कहते हैं। द्वंद्व का अर्थ दो या दो से अधिक वस्तुओं का युग्म अर्थात जोड़ा होता है। जैसे:–

समस्तपद	**विग्रह**
माँ–बाप	माँ और बाप
उतार–चढ़ाव	उतार या चढ़ाव
हार–जीत	हार या जीत
अपना–पराया	अपना या पराया

जल–थल	जल और थल
पाप–पुण्य	पाप और पुण्य
भला–बुरा	भला और बुरा
देश–विदेश	देश और विदेश

५) अव्ययीभाव समास:

इसमें पहला पद अव्यय तथा प्रधान होता है। इस प्रक्रिया द्वारा बना समस्तपद भी अव्यय की भाँति कार्य करता है, इसी कारण इस समास का नाम अव्ययीभाव समास पड़ा है। संस्कृत में अव्ययीभाव समास में पूर्वपद अव्यय होता है और उत्तरपद संज्ञा या विशेषण, जैसे भरपेट, यथासंभव, यथासम्मान, यथायोग्य आदि। लेकिन हिंदी समासों में इसके अपवाद स्वरूप पहला पद संज्ञा तथा विशेषण भी देखा गया है, जैसे: हाथों–हाथ (हाथ संज्ञा), हर घड़ी (हर विशेषण)।

समस्तपद	**विग्रह**
आमरण	मरण तक
आजन्म	जन्म से लेकर
यथाशक्ति	शक्ति के अनुसार
यथा शीघ्र	जितना शीघ्र हो सके
भरपेट	पेट भरकर
भरपूर	पूरा भरा हुआ
हाथों–हाथ	हाथों ही हाथ में
गाँव–गाँव	प्रत्येक गाँव
प्रतिदिन	प्रत्येक दिन
सादर	आदर सहित

६) बहुब्रीहि समास:

जिस पद के दोनों पद प्रधान न हों और समस्तपद अपने पदों से भिन्न किसी अन्य संज्ञा का बोध करवाते हों, तो उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं। इनका विग्रह करने पर विशेष रूप से 'वाला', 'वाली', 'जिसका', 'जिसकी', 'जिससे' आदि शब्द पाए जाते हैं। जैसे–

समस्तपद	**विग्रह**
त्रिलोचन	तीन हैं लोचन जिसके अर्थात शिव।
चक्रपणि	चक्र है हाथ में जिसके अर्थात विष्णु।
दशानन	दस हैं मुख जिसके अर्थात रावण।
महावीर	महान वीर हैं हो अर्थात हनुमानजी।
लंबोदर	लंबा है उदर जिसका अर्थात गणेश जी।
गजानन	गज के समान मुखवाला अर्थात् गणेश जी।
घनश्याम	घन के समान श्याम है जो अर्थात् कृष्ण
पंकज	पंक (कीचड़) में पैदा होनेवाला अर्थात कमल।
प्रधानमंत्री	मंत्रियों में प्रधान है जो अर्थात् पद–विशेष।
कुरूप	असुंदर रूप वाला अर्थात् व्यक्ति–विशेष।
अल्पबुद्धि	अल्प है बुद्धि जिसकी अर्थात् व्यक्ति–विशेष।
तिरंगा	तीन रंगों वाला अर्थात भारत का राष्ट्रध्वज।
चतुर्भुज	सुंदर केश (किरणें) हैं जिसके अर्थात् चाँद

११.४ विभिन्न समासों में अंतर

कुछ शब्द कई बार दो–दो समासों के अन्तर्गत आते है, इसका मुख्य कारण है कि हम संधि विग्रह करते समय किस बात का ध्यान रखते हैं। इस तरह की समस्या बहुब्रीहि तथा कर्मधारय या द्विगु समास में होता हैं।

१) कर्मधारय और बहुब्रीहि समास में अंतर:

कर्मधारय और बहुब्रीहि समास में सूक्ष्म अंतर पाया जाता है। कर्मधारय समास में पूर्वपद–उत्तरपद में विशेषण–विशेष्य या उपमेय–उपमान का संबंध होता है, जबकि बहुब्रीहि समास में दोनों पद मिलकर किसी तीसरे पद, किसी संज्ञा के लिए विशेषण का कार्य करता है। जैसे:–

१) नीलकंठ: नीला है कंठ (कर्मधारय)

नीला है कंठ, जिसका अर्थात् शिव (बहुब्रीहि)

२) पीतांबर: पीत के समान अंबर (कर्मधारय)

पीत है अंबर जिसका अर्थात् श्रीकृष्ण (बहुब्रीहि)

३) मृगनयन: मृग के नयन के समान नयन (कर्मधारय)

मृग के नयन के समान नयन है जिसके अर्थात् स्त्री–विशेष (बहुब्रीहि)

२) द्विगु और बहुब्रीहि समास के अंतर:

कुछ शब्द बहुब्रीहि तथा द्विगु दोनों समासों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। दोनों में केवल अंतर इतना है कि द्विगु समास का प्रथम पद संख्यावाचक विशेषण होता है और शेष पद उसका विशेष्य जबकि बहुब्रीहि समास में समस्त पद किसी संज्ञा के लिए विशेषण का कार्य करता है जैसे:–

१) त्रिनेत्र: तीन नेत्रों का समूह (द्विगु समास)।

तीन है नेत्र जिसके अर्थात् शिव (बहुब्रीहि)।

२) तिरंगा: तीन रंगों का समाहार (द्विगु)।

तीन रंगों वाला अर्थात् भारत का राष्ट्रध्वज (बहुब्रीहि)।

३) चारपाई: चार पायों का समूह (द्विगु)।

चार हैं पाय जिसके अर्थात् चारपाई (बहुब्रीहि)।

११.५ संधि और समास में अंतर

संधि तथा समास देखने में परस्पर मिली–जुली प्रक्रिया ही लगती है, परन्तु दोनों में अन्तर हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं:

संधि	समास
१) संधि में शब्दों के मेल होता है।	१) समास में पदों का मेल होता है।
२) संधि का अर्थ जोड़ है।	२) समास का अर्थ है संक्षिप्त।
३) संधि दो शब्दों में होती है।	३) समास दो या अधिक शब्दों का मेल होता है।
४) संधि तोड़ने को विच्छेद कहा जाता हैं।	४) समास अलग करने को विग्रह कहा जाता है।
५) दो निरर्थक शब्दों के वर्ग में संधि हो सकती हैं।	५) समास केवल सार्थक शब्दों में ही हो सकता हैं।
६) संधि में शब्दों के योग का मूल अर्थ परिवर्तित नहीं होता।	६) जबकि समास में मूल अर्थ सुरक्षित रह भी सकता है और परिवर्तित भी हो सकता है।
७) संधि प्रक्रिया में दो वर्गों में विकार	७) समास में दो शब्दों के मध्य समास चिह्न (–

उत्पन्न होता है।	) लुप्त हो जाता है।
८) संधि में जिन शब्दों का योग होता है, उनका मूल अर्थ परिवर्तित नहीं होता। जैसे–विद्यालय में विद्या और आलय दोनों शब्दों का मूल अर्थ सुरक्षित हैं।	८) जबकि समास से बने शब्दों का मूल अर्थ सुरक्षित रह भी सकता है (जैसे: देशभक्ति, सेना पति) और नहीं भी (जैसे जलपान)। जलपान का अर्थ जल का पान नहीं, अपितु नाश्ता है।

११.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में समास किसे कहते है, उसका स्वरुप तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय का अध्ययन किया हैं | यहाँ पर 'समास' उस प्रक्रिया हो कहते है जिसमें दो या अधिक शब्द मिलाकर उनके बीच के संबधसुचक आदि शब्दों का लोप करके नया शब्द बनाते हैं | इसे देखा गया हैं |

११.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्र.१ समास किसे कहते हैं? समास के कितने भेद हैं? उदाहरण सहित लिखिए।

प्र.२ समास किसे कहते हैं। समास विग्रह से क्या समझते हैं | उदाहरण देते हुए लिखिए। द्ववीगु तथा बहुब्रीहि समास में अंतर को उदाहरण सहित लिखिए।

प्र.३ समास से आप क्या समझते है? कर्मधारण और बहुब्रीहि समास में उदाहरण सहित अंतर समझाए।

प्र.४ समास तथा संधि में अंतर स्पष्ट कीजिए।

११.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ दो शब्दों के संक्षेपण प्रक्रिया क्या कहलाती है?

उ. समास।

प्र.२ समास रचना में कितने पद होते हैं?

उ. दो पद होते हैं।

प्र.३ दोनों पदों से बने नए शब्द को क्या कहते हैं?

उ. समस्त पद कहते हैं।

प्र.४ समस्त के सभी पद को अलग–अलग करने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं?

उ. समास विग्रह कहते हैं।

प्र.५ समास के कितने भेद होते हैं?

उ. छः भेद।

प्र.६ जहाँ निषेध के अर्थ में 'न', 'अ', या अन का प्रयोग होता है, उसे क्या कहते है?

उ. नत्र समास कहते हैं।

प्र.७ जिस शब्द का पहला पद संख्यावाचक विशेषण होता है, उसे कौन सा समास कहते हैं?

उ. द्विगु समास (द्विग समास)।

प्र.८ जिस समस्तपद में दोनों पद प्रधान हों और विग्रह करते समय पदों के बीच 'और', या का प्रयोग होता है, कौन सा समास कहलाता है?

उ. द्वंद्व समास।

प्र.९ किस समास में कोई पद प्रधान नहीं होते हैं?

उ. बहुब्रीहि समास।

प्र.१० किस समास में समस्त पद अव्यय की भाँति काम करता है?

उ. अव्ययी भाव समास।

११.९ संदर्भ पुस्तकें

१) हिंदी भाषा की रचना – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश – डॉ. महेंद्र कुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका – डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना – शशि शर्मा

*****